मई, 2014

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान

संपादक

अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक

जुगल किशोर

महत्वपूर्ण निर्णय

कारागार अधिनियम, 1894 (1894 का 9) – धारा 52-क [सपठित कारागार (पंजाब संशोधन) विधेयक, 2011] – अपराध कारित किए जाने और अधिसूचना की तारीख का महत्व – पंजाब सरकार द्वारा जारी की गई अधिसूचना मार्च, 2011 को प्रवृत्त हुई है तथा अपराध सितंबर, 2009 में कारित किया गया है, अतः यह अधिसूचना वर्तमान मामले को लागू नहीं होगी और अपीलार्थी के विरुद्ध कोई भी मामला नहीं बनेगा ।

वरिन्दर सिंह बनाम पंजाब राज्य और एक अन्य 264

संसद् के अधिनियम

बाल-विवाह प्रतिषेध अधिनियम, 2006 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (9)

पृष्ठ संख्या 145 – 293

[2014] 2 उम. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

संपादक-मंडल

श्री प्रेम कुमार मल्होत्रा, सचिव, विधायी विभाग	श्री लालजी प्रसाद, सेवानिवृत्त प्रधान संपादक, वि.सा.प्र.
श्रीमती शारदा जैन, संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग	श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल, सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.
डा. विजय नारायण मणि, अधिवक्ता, (पूर्व संपादक) वि.सा.प्र.	श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय, प्रधान संपादक
प्रो. डा. वैभव गोयल, लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी (उत्तराखण्ड)	श्री महमूद अली खां, संपादक
डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल, विधि विभाग, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय	श्री जुगल किशोर, संपादक
डा. ऋषिपाल सिंह, सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव, राजभाषा खंड	डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय, संपादक

सहायक संपादक	: सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान
उप-संपादक	: सर्वश्री दयाल चन्द गोवर, महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 19

वार्षिक : ₹ 225

© 2014 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग),
भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – मई, 2014 [पृष्ठ संख्या 145 – 293]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

मई, 2014

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
दीपक भंडारी बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम लिमिटेड और अन्य	275
भारत संचार निगम लिमिटेड बनाम भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण और अन्य	145
वरिन्दर सिंह बनाम पंजाब राज्य और एक अन्य	264
<u>संसद् के अधिनियम</u>	
बाल-विवाह प्रतिषेध अधिनियम, 2006 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	(1) – (9)

कारागार अधिनियम, 1894 (1894 का 9)

– धारा 42 – कारागार अपराध – प्रतिषिद्ध संपर्क – प्रतिषिद्ध वस्तुओं का कारागार में लाया जाना – धारा 42 के अधीन केवल वही संपर्क प्रतिषिद्ध माना जाएगा जो धारा 59 के अधीन बनाए गए नियमों के प्रतिकूल होगा अन्यथा नहीं ।

वरिन्दर सिंह बनाम पंजाब राज्य और एक अन्य 264

– धारा 45 – कारागार अपराध – बंदी और दर्शक में अंतर – धारा 45 के खंड (12) के अंतर्गत उल्लिखित अपराध केवल उसी व्यक्ति द्वारा कारित किए जा सकते हैं जो कारागार में बंदी है अन्यथा नहीं, यह धारा दर्शक द्वारा किए गए अपराध को लागू नहीं होगी ।

वरिन्दर सिंह बनाम पंजाब राज्य और एक अन्य 264

– धारा 52-क [सपटित कारागार (पंजाब संशोधन) विधेयक, 2011] – अपराध कारित किए जाने और अधिसूचना की तारीख का महत्व – पंजाब सरकार द्वारा जारी की गई अधिसूचना मार्च, 2011 को प्रवृत्त हुई है तथा अपराध सितंबर, 2009 में कारित किया गया है, अतः यह अधिसूचना वर्तमान मामले को लागू नहीं होगी और अपीलार्थी के विरुद्ध कोई भी मामला नहीं बनेगा ।

वरिन्दर सिंह बनाम पंजाब राज्य और एक अन्य 264

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 482 – उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या परिवाद का अभिखंडित किया जाना – जहां प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या परिवाद में ऐसे अभिकथन किए गए हों कि यदि उन्हें

यूँ ही मान लिया जाए और पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया जाए तब भी उनसे अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम-दृष्ट्या कोई भी अपराध गठित नहीं होता हो, तब न्यायालय को ऐसी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या परिवाद को खारिज कर देना चाहिए ।

वरिन्दर सिंह बनाम पंजाब राज्य और एक अन्य

264

परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36)

– अनुच्छेद 136, अनुच्छेद 137 और अनुच्छेद 55 [सपठित राज्य वित्तीय निगम अधिनियम, 1951 (1951 का 63) की धारा 29 और 31] – वित्तीय निगमों द्वारा प्रत्युद्धरण वाद – वाद फाइल करने के लिए परिसीमा का आरंभिक बिन्दु – वित्तीय निगम द्वारा उधार की वसूली के लिए अनुस्मरण सूचना जारी करने के बाद धारा 29 के अधीन कार्यवाहियां आरंभ करना और आस्तियों का विक्रय करना – आस्तियों के विक्रय आगम को समायोजित करने के बाद अतिशेष रकम की वसूली के लिए कंपनी के निदेशकों के विरुद्ध वाद फाइल किया जाना – जब निगम धारा 29 का अवलंब लेकर उधार की वसूली के लिए कार्यवाही आरंभ करता है तब अतिशेष की वसूली के लिए परिसीमा अवधि विक्रय आगमों का समायोजन करने के बाद से ही आरंभ होगी और वह वाद अनुच्छेद 55 के अंतर्गत आएगा चूंकि क्षतिपूर्ति की संविदा के आधार पर वाद चलाने का अधिकार तब उद्भूत होता है जब आस्तियों के विक्रय आगम निगम के देयों की तुष्टि करने में अपर्याप्त पाए जाते हैं ।

**दीपक भंडारी बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य
औद्योगिक विकास निगम लिमिटेड और अन्य**

275

भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 1997 (2000 के अधिनियम सं. 2 द्वारा यथासंशोधित)

— धारा 14 और 36 — भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण द्वारा बनाए गए विनियमों को दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के समक्ष चुनौती दिया जाना — अधिकरण की अधिकारिता — प्राधिकरण की विनियम बनाने की शक्ति अप्रत्यायोजनीय होने के कारण प्रशासनिक न होकर विधायी है और उसके द्वारा बनाए गए विनियमों को केवल संसद् द्वारा ही अप्रभावी, परिवर्तित या उपांतरित किया जा सकता है, किसी और अन्य निकाय द्वारा नहीं, इसलिए अधिकरण को प्राधिकरण द्वारा बनाए गए विनियमों की चुनौती को ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं है ।

भारत संचार निगम लिमिटेड बनाम भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण और अन्य

145

— धारा 36(1) और (2) — प्राधिकरण की विनियम बनाने की शक्ति — परिधि और व्याप्ति — जब प्राधिकरण को धारा 36(1) के अधीन साधारण निबंधनों में अधीनस्थ विधायन की प्रकृति के विनियम बनाने की शक्ति प्रदत्त की गई है, तो उसके पश्चात् उपधारा (2) में प्रगणित विषय मात्र दृष्टांत स्वरूप हैं और इससे साधारण शक्ति की व्याप्ति सीमित नहीं हो जाती है तथा प्राधिकरण अधिनियम के विभिन्न उपबंधों में विनिर्दिष्ट प्रयोजनों को पूरा करने के लिए विनियम बनाने के लिए सशक्त है ।

भारत संचार निगम लिमिटेड बनाम भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण और अन्य

145

– धारा 36(1), (2), धारा 11, 12 और 13 – प्राधिकरण की विनियम बनाने की शक्ति – परिधि और व्याप्ति – निर्बंधन – प्राधिकरण को प्रदत्त की गई विनियम बनाने की शक्ति विस्तृत और व्यापक है तथा इस शक्ति के प्रयोग पर एकमात्र निर्बंधन यह है कि शक्ति का प्रयोग अधिनियम के उपबंधों और तद्धीन बनाए गए नियमों के संगत होना चाहिए तथा अन्य कोई निर्बंधन नहीं है ।

भारत संचार निगम लिमिटेड बनाम भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण और अन्य

145

– धारा 36, 11(1)(ख)(i) से (ix), 12 और 13 – भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण की धारा 36(1) के अधीन विनियम बनाने की शक्ति – “विनियमित करना” शब्द का अर्थ – धारा 11(1)(ख)(iv) में प्रयुक्त विनियमित करना शब्द पर्याप्त रूप से नम्य होने के कारण इसके अंतर्गत विनियम बनाना भी सम्मिलित है और केवल यह तथ्य कि “जैसा कि विनियमों में उपबंधित किया जाए” अभिव्यक्ति केवल उपधारा (vii) और (viii) में ही प्रकट होती है और अन्य उपखंडों में इसका प्रयोग नहीं करने का अर्थ यह नहीं है कि प्राधिकरण उपखंड (i) से (vi) में विनिर्दिष्ट विषयों पर विनियम नहीं बना सकता हो ।

भारत संचार निगम लिमिटेड बनाम भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण और अन्य

145

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है। उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है। इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ को पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है। उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है। तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन - ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

**विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001**

[2014] 2 उम. नि. प. 145

भारत संचार निगम लिमिटेड

बनाम

भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण और अन्य

6 दिसम्बर, 2013

न्यायमूर्ति जी. एस. सिंघवी, न्यायमूर्ति बी. एस. चौहान और न्यायमूर्ति
फकीर मोहम्मद इब्राहिम कलीफुल्ला

भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 1997 (2000 के अधिनियम सं. 2 द्वारा यथासंशोधित) – धारा 36 (1) और (2) – प्राधिकरण की विनियम बनाने की शक्ति – परिधि और व्याप्ति – जब प्राधिकरण को धारा 36(1) के अधीन साधारण निबंधनों में अधीनस्थ विधायन की प्रकृति के विनियम बनाने की शक्ति प्रदत्त की गई है, तो उसके पश्चात् उपधारा (2) में प्रगणित विषय मात्र दृष्टांत स्वरूप हैं और इससे साधारण शक्ति की व्याप्ति सीमित नहीं हो जाती है तथा प्राधिकरण अधिनियम के विभिन्न उपबंधों में विनिर्दिष्ट प्रयोजनों को पूरा करने के लिए विनियम बनाने के लिए सशक्त है ।

भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 1997 (2000 के अधिनियम सं. 2 द्वारा यथासंशोधित) – धारा 36(1), (2), धारा 11, 12 और 13 – प्राधिकरण की विनियम बनाने की शक्ति – परिधि और व्याप्ति – निर्बंधन – प्राधिकरण को प्रदत्त की गई विनियम बनाने की शक्ति विस्तृत और व्यापक है तथा इस शक्ति के प्रयोग पर एकमात्र निर्बंधन यह है कि शक्ति का प्रयोग अधिनियम के उपबंधों और तद्धीन बनाए गए नियमों के संगत होना चाहिए तथा अन्य कोई निर्बंधन नहीं है ।

भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 1997 (2000 के अधिनियम सं. 2 द्वारा यथासंशोधित) – धारा 36, 11(1)(ख)(i) से (ix), 12 और 13 – भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण की धारा 36(1) के अधीन विनियम बनाने की शक्ति – “विनियमित करना” शब्द का अर्थ – धारा 11(1)(ख)(iv) में प्रयुक्त विनियमित करना शब्द पर्याप्त रूप से नम्य होने के कारण इसके अंतर्गत विनियम बनाना भी सम्मिलित है और केवल यह तथ्य

कि “जैसा कि विनियमों में उपबंधित किया जाए” अभिव्यक्ति केवल उपधारा (vii) और (viii) में ही प्रकट होती है और अन्य उपखंडों में इसका प्रयोग नहीं करने का अर्थ यह नहीं है कि प्राधिकरण उपखंड (i) से (vi) में विनिर्दिष्ट विषयों पर विनियम नहीं बना सकता हो ।

भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 1997 (2000 के अधिनियम सं. 2 द्वारा यथासंशोधित) – धारा 14 और 36 – भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण द्वारा बनाए गए विनियमों को दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के समक्ष चुनौती दिया जाना – अधिकरण की अधिकारिता – प्राधिकरण की विनियम बनाने की शक्ति अप्रत्यायोजनीय होने के कारण प्रशासनिक न होकर विधायी है और उसके द्वारा बनाए गए विनियमों को केवल संसद् द्वारा ही अप्रभावी, परिवर्तित या उपांतरित किया जा सकता है, किसी और अन्य निकाय द्वारा नहीं, इसलिए अधिकरण को प्राधिकरण द्वारा बनाए गए विनियमों की चुनौती को ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं है ।

मामले के तथ्यों के अनुसार, भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण द्वारा भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 1997 (2000 के अधिनियम सं. 2 द्वारा यथासंशोधित) की धारा 36 के अधीन विभिन्न सेवा प्रदाताओं के बीच अंतःसंबंध पोर्ट प्रभार और दूर-संचार अंतःसंबंध (प्रभार और आमदनी बंटवारा) विनियम बनाए गए, जो तारीख 28 मई, 1999 को प्रवृत्त हुए । विनियमों को अंतःसंबंध करारों के संबंध में अध्यारोही प्रभाव दिया गया । उच्च न्यायालय के समक्ष 1999 के विनियमों को चुनौती दी गई, जो उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा मंजूर की गई और यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 36 के अधीन बनाए गए विनियमों को अध्यारोही प्रभाव नहीं दिया जा सकता है । इसके पश्चात् प्राधिकरण ने दूर-संचार अंतःसंबंध (पोर्ट प्रभार) संशोधन विनियम बनाए । पोर्ट प्रभार संशोधित विनियमों की अनुसूची में विनिर्दिष्ट किए गए थे । संशोधित विनियमों को दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के समक्ष अपीलें फाइल करके चुनौती दी गई, जो क्रमशः तारीख 27 अप्रैल, 2005 और तारीख 3 मई, 2005 के आदेशों द्वारा मंजूर की गई । दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के पूर्वोक्त आदेशों को दृष्टिगत करते हुए, प्राधिकरण ने पोर्ट प्रभारों के पुनर्विलोकन के लिए विभिन्न सेवा प्रदाताओं की प्रतिक्रिया मांगी । इस प्रक्रिया में, भारत संचार निगम लिमिटेड ने अंतःसंबंध करारों के निबंधनों और शर्तों या संविदात्मक

दरों में परिवर्तन करने की प्राधिकरण की अधिकारिता पर आक्षेप उठाए। प्राधिकरण ने तारीख 2 फरवरी, 2007 को प्राइवेट दूर-संचार आपरेटरों द्वारा भारत संचार निगम लिमिटेड को संदत्त किए जाने वाले अपेक्षित पोर्ट प्रभारों को लगभग 23-29 प्रतिशत तक कम करते हुए दूर-संचार अंतःसंबंध (पोर्ट प्रभार) संशोधन विनियम जारी किए। भारत संचार निगम लिमिटेड ने तारीख 2 फरवरी, 2007 की अधिसूचना को चुनौती दी। दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने तारीख 28 मई, 2010 के आदेश द्वारा भारत संचार निगम लिमिटेड की अपील को मंजूर किया और निदेश जारी किए। भारत संचार निगम लिमिटेड, सेलुलर आपरेटर्स एसोसिएशन आफ इंडिया, एसोसिएशन आफ यूनीफेड टेलीकॉम सर्विस प्रोवाइडर्स आफ इंडिया, दि अथारिटी, मैसर्स सिसटेमा श्याम टेली सर्विसेज लिमिटेड और महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड द्वारा दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण द्वारा तारीख 28 मई, 2010 को पारित किए गए उस आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल की गईं, जिसके द्वारा दूर-संचार अंतःसंबंध (पोर्ट प्रभार) संशोधन विनियम (2007 का 1) के विरुद्ध भारत संचार निगम लिमिटेड द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर की गई थी और प्राधिकरण को विनियमों पर नए सिरे से विचार करने का निदेश दिया गया था तथा भारत संचार निगम लिमिटेड को निदेश दिया था कि किसी आपरेटर से अन्तर्काल अर्थात् विनियमों के प्रवृत्त होने की तारीख और आदेश की तारीख के बीच की अवधि के दौरान की किसी रकम का दावा न करे। 2005 की सिविल अपील सं. 3298 (भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण बनाम भारत संचार निगम लिमिटेड) और संबद्ध मामलों में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने तारीख 6 फरवरी, 2007 को पारित किए गए आदेश द्वारा लोक महत्व के विधि के कतिपय सारभूत प्रश्नों का अवधारण करने के लिए बृहत्तर न्यायपीठ को एक निर्देश किया। जब मामले बृहत्तर न्यायपीठ के समक्ष सूचीबद्ध किए गए तो पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसिल इस बात पर सहमत हुए कि तारीख 6 फरवरी, 2007 के आदेश द्वारा विरचित किए गए प्रश्नों पर विचार करने से पूर्व अधिकरण द्वारा बनाए गए विनियमों को दी गई चुनौती को ग्रहण करने के लिए दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण की अधिकारिता संबंधी प्राथमिक मुद्दे का विनिश्चय किया जाए। इसके उपरांत, न्यायालय ने इस प्रश्न पर दलीलें सुनने का विनिश्चय किया कि “क्या दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण को अधिनियम की धारा 14(ख) के अधीन उसमें निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए प्राधिकरण द्वारा अधिनियम

की धारा 36 के अधीन बनाए गए विनियमों को दी गई चुनौती को ग्रहण करने की अधिकारिता है या नहीं। उच्चतम न्यायालय की बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा तदनुसार प्राथमिक मुद्दे का विनिश्चय करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्ष 2000 के संशोधन के पश्चात् भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण स्वप्रेरणा से या अनुज्ञापक के अनुरोध पर धारा 11(1)(क)(i) से (viii) में प्रगणित विषयों पर सिफारिशें कर सकता है। प्राधिकरण से धारा 11(1)(ख) के अधीन इसके खंड (i) से (ix) में प्रगणित नौ कृत्य करने की अपेक्षा की गई है। इन खंडों में “सुनिश्चित”, “नियत”, “विनियमित” और “अधिकथित” जैसे विभिन्न शब्दों का प्रयोग किया गया है। “सुनिश्चित” शब्द के प्रयोग से यह विवक्षित है कि प्राधिकरण विशिष्ट विषय पर निदेश जारी कर सकता है। प्राधिकरण धारा 11(1)(ख) के विभिन्न खंडों के अधीन आने वाले कृत्यों के प्रभावी निर्वहन के लिए समुचित विनियम बना सकता है। उपखंड (iv) में अंतर्विष्ट “विनियमित” शब्द से यह दर्शित होता है कि सेवा प्रदाताओं के बीच दूर-संचार सेवाएं उपलब्ध कराने से व्युत्पन्न उनकी आमदनी को बांटने संबंधी व्यवस्था को सुकर बनाने के लिए प्राधिकरण या तो निदेश जारी कर सकता है या विनियम बना सकता है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि “विनियमित करना” शब्द निदेश जारी करने या विनियम बनाने के लिए पर्याप्त रूप से नम्य है और केवल यह तथ्य कि धारा 11(1)(ख) के खंड (vii) और (viii) में आने वाली अभिव्यक्ति “जैसाकि विनियमों में उपबंधित किया जाए” इस उपधारा के अन्य खंडों में प्रयुक्त नहीं की गई है, इसका यह अर्थ नहीं है कि धारा 11(1)(ख) के खंड (i) से (vi) में विनिर्दिष्ट विषयों पर धारा 36(1) के अधीन विनियम नहीं बनाए जा सकते हैं। वास्तव में, प्राधिकरण धारा 36 के अधीन विनियम बनाकर खंड (i) से (vi) सहित धारा 11(1)(ख) के विभिन्न खंडों के अधीन कृत्यों के प्रयोग को सुकर बना सकती है। (पैरा 27 और 35)

प्राधिकरण धारा 36 की उपधारा (1) के अधीन धारा 11, 12 और 13 सहित अधिनियम के विभिन्न उपबंधों में विनिर्दिष्ट अधिनियम के प्रयोजनों को पूरा करने के लिए विनियम बना सकता है। धारा 36(1) के अधीन शक्ति का प्रयोग इस शर्त के साथ किया जा सकता है कि विनियम तथा तद्धीन बनाए गए नियम अवश्य अधिनियम के संगत होने चाहिएं। प्राधिकरण की विनियम बनाने की शक्ति पर कोई अन्य निर्बंधन नहीं है। धारा 37 के निबंधनों के अनुसार, विनियमों को संसद् के समक्ष रखा जाना

आवश्यक है, जो विनियमों का अनुमोदन कर सकती है, उपांतरण कर सकती है या अकृत कर सकती है। धारा 36(2), जो “उपधारा (1) के अधीन शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना” शब्दों के साथ आरंभ होती है, में उन विभिन्न विषयों को विनिर्दिष्ट किया गया है जिन पर प्राधिकरण द्वारा विनियम बनाए जा सकते हैं। इन विषयों में से तीन विषय प्राधिकरण के अधिवेशनों, इन अधिवेशनों में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया, अधिवेशनों के कारबार और प्राधिकरण द्वारा बनाए रखे जाने वाले रजिस्टर के संबंध में हैं। धारा 36(2) के खंड (R) और (च) में विनिर्दिष्ट शेष दो विषय सीधे तौर पर धारा 11(1)(ख)(viii) और 11(1)(ग) के प्रति निर्देश्य हैं। ये प्राधिकरण के मूलभूत कृत्य हैं। तथापि, धारा 36(2) की भाषा में ऐसी कोई बात नहीं है जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता हो कि इस धारा में अंतर्विष्ट उपबंध प्राधिकरण द्वारा धारा 36(1) के अधीन शक्ति के प्रयोग को नियंत्रित करते हैं या धारा 36(2) धारा 36(1) की व्याप्ति को निर्बंधित करती है। यह स्थिर विधि है कि यदि किसी प्राधिकरण/निकाय को साधारण शब्दों में अधीनस्थ विधायन बनाने की शक्ति प्रदत्त की गई है, तो विषयों का विशिष्टिकरण मात्र दृष्टांत स्वरूप होता है और इससे साधारण शक्ति की व्याप्ति सीमित नहीं होती है। (पैरा 36 और 37)

यहां यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि धारा 11(1)(ख)(iv) में विनिर्दिष्ट रूप से इन खंडों में विनिर्दिष्ट कृत्यों का निर्वहन करने के लिए विनियम बनाना परिकल्पित है। धारा 11(2), जिसमें भारतीय तार अधिनियम, 1885 की तुलना में सर्वोपरि खंड अंतर्विष्ट है, में यह अधिकथित किया गया है कि प्राधिकरण धारा 11(3) में विनिर्दिष्ट परिसीमा के अधीन रहते हुए, समय-समय पर, आदेश द्वारा, उन दरों को अधिसूचित कर सकेगा, जिन पर भारत और भारत के बाहर दूर-संचार सेवाएं अधिनियम के अधीन उपलब्ध कराई जाएंगी। धारा 12(1) के अधीन, प्राधिकरण आदेश जारी करने और किसी सेवा प्रदाता से उसके कार्यकलाप से संबंधित ऐसी जानकारी या स्पष्टीकरण मांगने या किसी सेवा प्रदाता के कार्यकलाप से संबंधित कोई जांच करने के लिए एक या अधिक व्यक्तियों को नियुक्त करने और किसी सेवा प्रदाता की लेखा बहियों या अन्य दस्तावेजों का निरीक्षण करने का निदेश देने के लिए सशक्त है। अधिनियम की धारा 12(4) और 13, जिनका प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् काउंसिलों द्वारा अपनी इस दलील के समर्थन में अवलंब लिया गया है कि

प्राधिकरण इन दोनों धाराओं में वर्णित विषयों पर विनियम नहीं बना सकता है, ये केवल समर्थकारी उपबंध हैं। यह बात धारा 12(4) में प्रयुक्त “की शक्ति होगी” और धारा 13 में प्रयुक्त “प्राधिकरण दे सकेगा” अभिव्यक्तियों से सुस्पष्ट होती है। धारा 12(4) के निबंधनों के अनुसार, प्राधिकरण सेवा प्रदाताओं को ऐसे निदेश दे सकता है, जो वह सेवा प्रदाताओं द्वारा उचित कृत्यकरण के लिए आवश्यक समझे। धारा 13 में यह अधिकथित है कि प्राधिकरण, धारा 11 की उपधारा (1) के अधीन अपने कृत्यों के निर्वहन के लिए, सेवा प्रदाताओं को ऐसे निदेश दे सकेगा, जो वह आवश्यक समझे। इस उपबंध की व्याप्ति को परन्तुक द्वारा सीमित किया गया है, जिसमें यह अधिकथित है कि धारा 12(4) या धारा 13 के अधीन कोई निदेश धारा 11(1)(ख) में विनिर्दिष्ट विषयों के सिवाय जारी नहीं किया जाएगा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्राधिकरण अपने कृत्यों के निर्वहन के लिए सेवा प्रदाताओं को निदेश जारी कर सकता है। अधिनियम में अनुज्ञप्तिधारियों और प्रयोक्ताओं जैसे बहुत-सारे प्रतियोगियों के बारे में उल्लेख किया गया है, जो “सेवा प्रदाता” शब्द की परिधि के अंतर्गत नहीं आते हैं। यदि प्राधिकरण को अनुज्ञप्तिधारियों या प्रयोक्ताओं के संबंध में अपने कृत्यों का निर्वहन करना है, तो उसे धारा 12(4) और 13 से भिन्न उपबंधों के अधीन शक्तियों का प्रयोग करना पड़ेगा। इसलिए, प्राधिकरण धारा 36(1) के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए ऐसे विनियम बना सकता है, जो उसे सेवा प्रदाताओं पर लागू होने वाले साधारण स्वरूप के निदेश जारी करने के लिए सशक्त करे और यह नहीं कहा जा सकता है कि प्राधिकरण ने अधिनियम की धारा 36(1) के अधीन विनियम बनाकर धारा 12(4) और 13 द्वारा अधिकृत विषयक्षेत्र का अधिक्रमण किया है। मामले के इस पहलू से अलग होने से पूर्व, न्यायालय धारा 33 और 37 की अवेक्षा कर सकता है। धारा 33 की सुस्पष्ट भाषा को पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि प्राधिकरण, साधारण या विशेष आदेश द्वारा, प्राधिकरण के किसी सदस्य या अधिकारी या किसी अन्य व्यक्ति को अधिनियम के अधीन अपनी ऐसी शक्तियों और कृत्यों का, अध्याय 4 के अधीन विवाद का निपटारा करने और धारा 36 के अधीन विनियम बनाने की शक्ति को छोड़कर, प्रत्यायोजन कर सकेगा। इससे यह अभिप्रेत है कि धारा 36 के अधीन विनियम बनाने की शक्ति अप्रत्यायोजनीय है। धारा 36 को धारा 33 की परिधि से अपवर्जित करने का कारण सुस्पष्ट है। धारा 36 के अधीन शक्ति प्रशासनिक शक्ति के विपरीत विधायी शक्ति है। धारा 37 के आधार पर, अधिनियम के अधीन बनाए गए विनियमों को ऐसे नियमों के

समान रखा गया है जो धारा 35 के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाए जा सकते हैं और नियमों और विनियमों को, अधीनस्थ विधायनों की प्रकृति का होने के कारण, संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखा जाएगा, जो इन्हें अकृत या संशोधित कर सकते हैं। इस प्रकार, प्राधिकरण द्वारा बनाए गए विनियमों को केवल संसद् द्वारा निष्प्रभावी या संशोधित किया जा सकता है, किसी अन्य निकाय द्वारा नहीं। उपरोक्त चर्चा और पूर्वगामी पैराओं में निर्दिष्ट किए गए निर्णयों में अधिकथित की गई प्रतिपादनाओं को दृष्टिगत करते हुए, न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि प्राधिकरण में धारा 36(1) के अधीन निहित विनियम बनाने की शक्ति व्यापक और विस्तृत है। इस शक्ति का प्रयोग केवल अधिनियम के उपबंधों और इसकी धारा 35 के अधीन बनाए गए नियमों के अध्यक्षीन है। धारा 36(1) के अधीन प्राधिकरण द्वारा शक्ति का प्रयोग करने पर कोई अन्य निर्बंधन नहीं है। यह शक्ति धारा 36(2) या धारा 11, 12 और 13 द्वारा नियंत्रित या परिसीमित नहीं है। (पैरा 43, 44 और 45)

न्यायालय द्वारा विरचित किए गए प्रश्न का दूसरा अति महत्वपूर्ण पहलू यह है कि क्या दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण को प्राधिकरण द्वारा बनाए गए विनियमों को दी गई चुनौती को ग्रहण करने की अधिकारिता है या नहीं। संबंधित दलीलों पर विचार करने से पूर्व, फिर से धारा 14 (असंशोधित और संशोधित) पर विचार करना होगा। प्राधिकरण असंशोधित धारा 14(1) के अधीन सेवा प्रदाताओं के बीच और दो सेवा प्रदाताओं और उपभोक्ताओं के किसी समूह के बीच विवादों का विनिश्चय कर सकता था। धारा 14(2) (असंशोधित) के निबंधनों के अनुसार, प्राधिकरण के अध्यक्ष द्वारा गठित न्यायपीठ उन शक्तियों और प्राधिकार का प्रयोग कर सकती है, जो सेवा प्रदाताओं के बीच तकनीकी संगतता और अंतःसंबंध, विभिन्न सेवा प्रदाताओं के बीच आमदनी बांटने की व्यवस्था, दूर-संचार सेवाओं की गुणवत्ता और उपभोक्ताओं के हित से संबंधित विषय के बारे में पूर्व में सिविल न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य थे। तथापि, धारा 14(2) के खंड (क), (ख) और (ग) में विनिर्दिष्ट विवादों का विनिश्चय अध्यक्ष द्वारा गठित न्यायपीठ द्वारा नहीं किया जा सकता था। चूंकि असंशोधित अधिनियम की धारा 14 के अधीन विवादों का निपटारा करने के लिए उपबंधित प्रक्रिया समाधानप्रद नहीं थी, इसलिए संसद् ने इस धारा को प्रतिस्थापित किया और दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के रूप में ज्ञात एक स्वतंत्र न्यायनिर्णायक निकाय की स्थापना को सुकर बनाया। संशोधित

धारा 14 का खंड (क) दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण को किसी अनुज्ञापक और अनुज्ञप्तिधारी के बीच, दो या अधिक सेवा प्रदाताओं के बीच और किसी सेवा प्रदाता और उपभोक्ताओं के समूह के बीच किसी विवाद को न्यायनिर्णीत करने की शक्ति प्रदत्त करता है। दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण की न्यायनिर्णायक शक्ति के तीन अपवाद हैं जो ऐसे विषयों से संबंधित हैं, जो एकाधिकार और अवरोधक व्यापारिक व्यवहार आयोग की अधिकारिता के अधीन हैं, किसी व्यक्तिगत उपभोक्ता की शिकायत, जो उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के अधीन स्थापित उपभोक्ता पीठ के समक्ष चलाई जा सकती है, और तार अधिनियम, 1885 की धारा 7-ख में निर्दिष्ट प्राधिकारी और किसी अन्य व्यक्ति के बीच विवाद है। धारा 14 के खंड (ख) (संशोधित) के निबंधनों के अनुसार, दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण प्राधिकरण के किसी निदेश, विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध अपील की सुनवाई और उसका निपटारा करने के लिए सशक्त है। धारा 14क(1) में धारा 14(क) में निर्दिष्ट किसी विवाद को न्यायनिर्णीत करने के लिए दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण को आवेदन करने का उपबंध किया गया है। धारा 14क(2) और (3) में प्राधिकरण द्वारा किए गए किसी निदेश, विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध अपील फाइल करने का उपबंध किया गया है और परिसीमा की अवधि भी विहित की गई है। धारा 14 की उपधारा (4) से (7) कुल मिलाकर प्रक्रियात्मक हैं। धारा 14ख अपील अधिकरण के गठन के संबंध में है। धारा 14ग में अध्यक्ष और सदस्यों की अर्हताएं विहित की गई हैं। धारा 14ग में दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के अध्यक्ष और अन्य प्रत्येक सदस्य की पदावधि का उल्लेख है। धारा 14R में सेवा के निबंधन और शर्तों का उल्लेख है। धारा 14च में रिक्तियों को भरने का उपबंध किया गया है। धारा 14छ दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के अध्यक्ष और अन्य सदस्यों को हटाए जाने और त्यागपत्र से संबंधित है। धारा 14ज दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के कर्मचारिवृंद के संबंध में है। धारा 14झ दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के कार्य का विभिन्न न्यायपीठों के बीच वितरण और उनके रोस्टर का उपबंध करने के लिए अध्यक्ष को सशक्त करती है। धारा 14ञ मामलों का एक न्यायपीठ से अन्य न्यायपीठ को अंतरण करने के लिए अध्यक्ष को सशक्त करती है। धारा 14ट यह

अधिकथित करती है कि किसी आवेदन या अपील का विनिश्चय बहुमत द्वारा होना चाहिए। धारा 14ठ में दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के अध्यक्ष और सदस्यों आदि को लोक सेवक होना माना गया है। धारा 14ड और 14ढ में लंबित मामलों और अपीलों के अंतरण का उपबंध है। वर्ष 2000 के संशोधन का मुख्य उद्देश्य प्राधिकरण के न्यायनिर्णायक कृत्यों को इसके प्रशासनिक और विधायी कृत्यों से अलग करना और इस आलोचना को समाप्त करना था कि जो विनियम बनाने और निदेश जारी करने या आदेश पारित करने के लिए सशक्त है, उसे ही उनकी वैधता का विनिश्चय करने की शक्ति दी गई है। धारा 14(ख) में प्रयुक्त “निदेश” शब्द धारा 12(4) और 12(1) के प्रति निर्देश्य है। “आदेश” शब्द धारा 11(2) और 12(1) के प्रति निर्देश्य है। “विनिश्चय” शब्द धारा 14क(2) और (7) में प्रयुक्त किया गया है। यही कारण है कि धारा 14ड के परन्तुक में वर्ष 2000 के संशोधन से पूर्व अध्याय 4 के अधीन न्यायनिर्णीत किए जाने वाले विवादों की बाबत प्राधिकरण के सीमित न्यायनिर्णायक कृत्यों को परिकल्पित किया गया है। धारा 14ड में यह परन्तुक वर्ष 2000 के संशोधन के प्रवर्तन में आने और दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण की स्थापना होने के बीच के अंतर से बचने के लिए अंतःस्थापित किया गया था। धारा 14(ख) में प्रयुक्त किसी शब्द का विवादों के न्यायनिर्णयन से कोई लेना-देना नहीं है। वर्ष 2000 के संशोधन के पूर्व, आवेदन धारा 15 के अधीन फाइल किए जाने अपेक्षित थे, और इस धारा में ऐसे आवेदनों का विनिश्चय करने की विस्तृत प्रक्रिया भी अंतर्विष्ट थी। जबकि धारा 15 की उपधारा (2) में “आदेश” शब्द प्रयुक्त किया गया है, इसकी उपधारा (3) और (4) में “विनिश्चय” शब्द प्रयुक्त किया गया है। उपधारा (5) के निबंधनों के अनुसार, प्राधिकरण के आदेशों और निदेशों को सेवा प्रदाताओं, सरकार और संबद्ध अन्य सभी व्यक्तियों पर आबद्धकर समझे जाते थे। धारा 18 प्राधिकरण के किसी विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध अपील करने का उपबंध करती थी। ऐसी अपील उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल की जा सकती थी। वर्ष 2000 में किए गए संशोधन का आशय प्राधिकरण की मूल अधिकारिता को दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण में निहित करना है और इस आशय को धारा 14(क) द्वारा प्राप्त किया गया। उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य अपीली अधिकारिता भी धारा 14(ख) के द्वारा दूर-संचार विवाद समाधान

और अपील अधिकरण में निहित है किंतु इसके अंतर्गत प्राधिकरण द्वारा किए गए विनिश्चय नहीं आते हैं। धारा 14ढ में उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित सभी अपीलों दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण को अंतरित करने का उपबंध किया गया है और उपधारा (2) के खंड (ख) के निबंधनों के अनुसार, दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण से ऐसी अपीलों का उस प्रक्रम से, जिस पर वह ऐसे अंतरण से पूर्व थी या किसी अन्य पूर्वतर प्रक्रम से या नए सिरे से, जो भी वह उचित समझे, कार्रवाई करना अपेक्षित था। चूंकि उच्च न्यायालय के पास अपील की सुनवाई करते समय अधीनस्थ विधायन के पुनर्विलोकन की शक्ति नहीं थी, इसलिए अन्तरिती न्यायनिर्णायक अधिकरण अर्थात् दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण धारा 14(ख) के अधीन उस शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है। परिणामतः, न्यायालय द्वारा विरचित किए गए प्रश्न का उत्तर निम्नलिखित निबंधनों में दिया जाता है : दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण को अधिनियम की धारा 14(ख) के अधीन अपने में निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए अधिनियम की धारा 36 के अधीन प्राधिकरण द्वारा बनाए गए विनियमों की चुनौती को ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं है। परिणामतः, न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण तथा दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया प्रतिकूल मत सही विधि को निरूपित नहीं करता है। साथ-ही-साथ, न्यायालय यह स्पष्ट करता है कि व्यथित पक्षकार उच्च न्यायालय के समक्ष समुचित याचिका फाइल करके अधिनियम की धारा 36 के अधीन बनाए गए विनियमों की विधिमान्यता को चुनौती देने के लिए स्वतंत्र होंगे। (पैरा 46, 49, 50, 51, 64 और 65)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

- [2012] (2012) 10 एस. सी. सी. 353 =
2012 (10) स्केल 285 :
**गुजरात राज्य बनाम गुजरात राजस्व अधिकरण
बार एसोसिएशन ;** 63
- [2011] (2011) 10 एस. सी. सी. 543 :
भारत संघ बनाम एसोसिएशन आफ यूनिफेड

- टेलीकॉम सर्विसेज़ प्रोवाइडर्स आफ इंडिया ; 48
- [2011] (2011) 8 एस. सी. सी. 274 :
अकेडमी आफ न्यूट्रिशन इम्प्रूवमेंट बनाम भारत संघ ; 42
- [2010] (2010) 11 एस. सी. सी. 1 :
मद्रास बार एसोसिएशन बनाम भारत संघ ; 48, 62, 63
- [2010] [2010] 3 उम. नि. प. 264 = (2010) 4
एस. सी. सी. 603 :
पीटीसी इंडिया लिमिटेड बनाम केन्द्रीय विद्युत
विनियामक आयोग ; 25, 47, 58
- [2007] (2007) 7 एस. सी. सी. 517 :
भारत संघ बनाम टाटा टेलीसर्विसेज़ (महाराष्ट्र)
लिमिटेड ; 48, 54
- [2006] (2006) 13 एस. सी. सी. 753 :
होटल एंड रेस्टोरेंट एसोसिएशन बनाम स्टार
इंडिया (प्राइवेट) लिमिटेड ; 48
- [2006] तारीख 28 मार्च, 2006 को विनिश्चित 2003 की
सिविल अपील सं. 6473 :
भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण बनाम
बीपीएल मोबाइल सेलुलर लिमिटेड ; 48, 56
- [2004] (2004) 5 एस. सी. सी. 430 :
उत्तर प्रदेश केन यूनियन फेडरेशन बनाम
पश्चिम उत्तर प्रदेश सुगर मिल्स एसोसिएशन ; 34
- [2004] (2004) 8 एस. सी. सी. 524 :
कलेरियंट इंटरनेशनल लिमिटेड बनाम
सिक्वोरिटी एक्सचेंज बोर्ड ; 13.3
- [2003] (2003) 3 एस. सी. सी. 186 :
सेलुलर आपरेटर्स एसोसिएशन आफ इंडिया बनाम
भारत संघ ; 6.3, 13.3, 48, 53
- [2002] (2002) 2 एस. सी. सी. 715 :
पश्चिम बंगाल विद्युत विनियामक आयोग बनाम

	सी. ई. एस. सी. लिमिटेड ;	13.3
[2000]	ए. आई. आर. 2000 दिल्ली 208 : महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड बनाम भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण ;	5.3, 8.9
[2000]	(2000) 8 एस. सी. सी. 655 : क्वैरी आनर्स एसोसिएशन बनाम बिहार राज्य ;	33
[1997]	(1997) 3 एस. सी. सी. 261 : एल. चन्द्र कुमार बनाम भारत संघ ;	47, 62
[1996]	(1996) 2 एस. सी. सी. 405 : दिल्ली साइंस फोरम बनाम भारत संघ ;	17
[1992]	(1992) सप्ली. (1) एस. सी. सी. 684 : दीपक थियेटर बनाम पंजाब राज्य ;	32
[1989]	(1989) सप्ली. (2) एस. सी. सी. 52 : जियाजीराव कॉटन मिल्स लिमिटेड बनाम मध्य प्रदेश विद्युत बोर्ड ;	31
[1986]	[1986] 3 उम. नि. प. 709 = 1986 (सप्ली.) एस. सी. सी. 20 : डी. के. त्रिवेदी एंड संस बनाम गुजरात राज्य ;	41
[1985]	[1985] 1 उम. नि. प. 615 = (1985) 1 एस. सी. सी. 641 : इंडियन एक्सप्रेस न्यूज़पेपर्स (मुम्बई) प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ ;	48
[1985]	[1985] 2 उम. नि. प. 578 = (1985) 2 एस. सी. सी. 116 : के. रामनाथन बनाम तमिलनाडु राज्य ;	30, 40
[1982]	[1982] 1 उम. नि. प. 168 = (1981) 2 एस. सी. सी. 205 : तमिलनाडु राज्य बनाम हिंद स्टोन ;	29
[1972]	[1972] 1 उम. नि. प. 434 = (1971) 2 एस. सी. सी. 747 :	

	नरिन्दर चंद हेम राज बनाम उप राज्यपाल, हिमाचल प्रदेश ;	59
[1966]	ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 1471 : रोहतक हिसार जिला विद्युत प्रदाय कंपनी लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ;	39
[1964]	[1964] 4 एस. सी. आर. 991 : अफज़ल उल्लाह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ;	38
[1964]	ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 1781 : वी. एस. राइस एंड आयल मिल्स बनाम आंध्र प्रदेश राज्य ;	28
[1959]	ए. आई. आर. 1959 एस. सी. 694 : रमण एंड रमण लिमिटेड बनाम मद्रास राज्य ;	59
[1951]	ए. आई. आर. 1951 एस. सी. 201 : संतोष कुमार जैन बनाम राज्य ;	40
[1942]	ए. आई. आर. 1942 पी. सी. 156 : एम्परर बनाम शिवनाथ बनर्जी ।	37, 38

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2010 की सिविल अपील सं. 5253 और इसके साथ 2005 की सिविल अपील सं. 951-952, 3298, 3299, 4529, 5834-36, 5837 और 6949, 2006 की सिविल अपील सं. 802, 2731, 2794 और 3504, 2007 की सिविल अपील सं. 4965-66, 2008 की सिविल अपील सं. 177 और 598-599, 2010 की सिविल अपील सं. 5184, 5873, 6068, 6255, डी 28298 और टी. सी. (सिविल) सं. 39 तथा 2011 की सिविल अपील सं. 271-281.

2007 की अपील सं. 4 में दूर-संचार विवाद समाधान और अपील

अधिकरण, नई दिल्ली के तारीख 28 मई, 2010 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

उपस्थित पक्षकारों की ओर से

सर्वश्री आर. एफ. नरीमन, महा-सालिसिटर, राकेश खन्ना, सहायक महा-सालिसिटर, रामजी श्रीनिवासन, राकेश द्विवेदी, डा. ए. एम. सिंघवी और मुकुल रोहतगी और इनके साथ (सुश्री) मनीषा धीर, रितेश कुमार, सिद्धार्थ पटनायक, अमित सिंह, सिद्धार्थ त्यागी, (सुश्री) देबोपमा राय, के. पी. एस. कोहली, मंजूल बाजपेयी, शाश्वत बाजपेयी, (सुश्री) बीना गुप्ता, अभय ए. जेना, नकुल मोहता, कवलजीत सिंह भाटिया, विवेक पाल ओरियन, ई. सी. अग्रवाल, (सुश्री) मधु सीकरी, मनाली सिंघल, संतोष सचिन, अभिजीत पी. मेघ, (सुश्री) मोनिका सिंघल, प्रखर निशांत, मोहित औलक, राजीव मेहता, (सुश्री) प्रियंका दास, मनु अग्रवाल, संजय कपूर, अनमोल चंदन, (सुश्री) अशमी मोहन, अभिनव मुखर्जी, गोपाल जैन, नवीन चावला, अभिषेक कुमार झा, दिवान खन्ना, रवि सीकरी आयुष्य कुमार, (सुश्री) गार्गी खन्ना, (सुश्री) अदिति त्रिपाठी, श्रीमती रचना जोशी इस्सर और (सुश्री) अमरीन रसूल

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति जी. एस. सिंघवी ने दिया ।

न्या. सिंघवी – 2005 की सिविल अपील सं. 3298 भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण (प्राधिकरण) बनाम भारत संचार निगम लिमिटेड (बीएसएनएल) और संबद्ध मामलों में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने तारीख 6 फरवरी, 2007 को पारित किए गए आदेश द्वारा लोक महत्व

के विधि के निम्नलिखित सारभूत प्रश्नों का अवधारण करने के लिए बृहत्तर न्यायपीठ को एक निर्देश किया :-

1. भारतीय तार अधिनियम, 1885 की धारा 4 के अधीन जारी की गई अनुज्ञप्तियों के निबंधनों और शर्तों तथा भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 1997 (जिसे संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) के उपबंधों के बीच किसी विरोध की स्थिति में क्या अधिनियम के उपबंध उस प्रयोजन और उद्देश्य जिसके लिए अधिनियम पारित किया गया है, अर्थात् अति आधुनिक प्रौद्योगिकी अंतःस्थापित करके देश में दूर-संचार के क्षेत्र में त्वरित विकास को सुनिश्चित करना और साथ-ही-साथ उपभोक्ताओं और सेवा प्रदाताओं के हितों का संरक्षण करना, को दृष्टिगत करते हुए अभिभावी होंगे ?

2. क्या प्राधिकरण को सभी अनुज्ञप्तियों की बाबत, इस बात को विचार में लाए बिना कि अनुज्ञप्तियां तारीख 24 जनवरी, 2000 से पूर्व जारी की गई थीं या इसके पश्चात्, विशेष रूप से भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण (संशोधन) अधिनियम, 2000 की धारा 11 की उपधारा (1) में सर्वोपरि खंड तथा धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (ख) के उपखंड (ii) को दृष्टिगत करते हुए, सेवा प्रदाताओं के बीच अंतःसंबद्धता के निबंधनों और शर्तों को नियत करने की शक्ति है ?

3. क्या प्राधिकरण को तारीख 24 जनवरी, 2000 के पश्चात् जारी की गई अनुज्ञप्तियों की बाबत सेवा प्रदाताओं के बीच अंतःसंबद्धता के निबंधनों और शर्तों, जिसमें अंतःसंबंध करारों के निबंधन और शर्तें भी सम्मिलित हैं को, अन्य बातों के साथ-साथ, तारीख 24 जनवरी, 2000 को यथासंशोधित भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 1997 की धारा 11(1) के परन्तुकों में अधिकथित स्कीम को दृष्टिगत करते हुए, नियत करने की शक्ति नहीं है और यदि प्राधिकरण के पास ऐसी कोई शक्ति नहीं है, तो संशोधित खंड 11(1)(ख)(ii) तथा विनिर्दिष्ट रूप से परन्तुकों में सन्निविष्ट नई स्कीम का सामंजस्यपूर्ण निर्वचन क्या होगा ?

4. क्या तारीख 24 जनवरी, 2000 को पुरःस्थापित भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 1997 के संशोधित उपबंधों के अधीन धारा 11(1)(ख)(ii) और धारा 11(1) के परन्तुकों की

स्कीम का सामंजस्यपूर्ण निर्वचन प्राधिकरण को तारीख 24 जनवरी, 2000 से पूर्व जारी की गई अनुज्ञप्तियों की बाबत अंतःसंबद्धता के निबंधनों और शर्तों को नियत करने की शक्ति केवल इस सीमा तक रखने की अनुज्ञा देगा कि अनुज्ञापक (भारत सरकार) प्राधिकरण की सिफारिशों को नई अनुज्ञप्तियों में सम्मिलित करने के लिए स्वीकार करें, जिससे कि भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम के संशोधन के पूर्व और पश्चात् प्रदान की गई अनुज्ञप्तियों के सेवा प्रदाताओं के बीच ऋजु प्रतिस्पर्धा बनाई रखी जा सके ?

5. क्या अपीलें वर्तमान स्वरूप में संघार्य हैं ?

2. बृहत्तर न्यायपीठ ने विभिन्न तारीखों पर दलीलों को सुना, किंतु तारीख 19 अक्टूबर, 2011 के आदेश द्वारा मामलों को निर्माचित कर दिया । उसके पश्चात् रजिस्ट्री ने गलती से सभी मामले दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष सूचीबद्ध कर दिए । सुनवाई के दौरान भारत संचार निगम लिमिटेड की ओर से उपसंजात होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल, श्री ए. एस. चंडिओक ने न्यायालय का ध्यान तारीख 6 फरवरी, 2007 और तारीख 21 अक्टूबर, 2010 के आदेशों की ओर आकृष्ट किया और बताया कि पूर्व में मामले बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा सुने गए थे । इसके उपरांत, दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने निदेश दिया कि मामले बृहत्तर न्यायपीठ के समक्ष रखे जाएं ।

3. जब मामले इस न्यायपीठ के समक्ष सूचीबद्ध किए गए तो पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेल इस बात पर सहमत हुए कि तारीख 6 फरवरी, 2007 के आदेश द्वारा विरचित किए गए प्रश्नों पर विचार करने से पूर्व अधिकरण द्वारा बनाए गए विनियमों को दी गई चुनौती को ग्रहण करने के लिए दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण की अधिकारिता संबंधी प्राथमिक मुद्दे का विनिश्चय किया जाए । इसके उपरांत, न्यायालय ने निम्नलिखित प्रश्न पर दलीलें सुनने का विनिश्चय किया :-

“क्या दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण को अधिनियम की धारा 14(ख) के अधीन उसमें निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए प्राधिकरण द्वारा अधिनियम की धारा 36 के अधीन बनाए गए विनियमों की चुनौती को ग्रहण करने की अधिकारिता है या नहीं ?”

4. पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसिलों द्वारा दी गई दलीलों का बेहतर मूल्यांकन करने के लिए हम भिन्न-भिन्न अपीलों के अभिलेख से प्रकट तथ्यों की अवेक्षा कर सकते हैं ।

2010 की सिविल अपील सं. 5253, 5184, 5873, 6068, 6255 और 2010 की सिविल अपील सं. डी 28298.

5.1. 2010 की सिविल अपील सं. डी 28298 फाइल करने और पुनःफाइल करने में हुए विलंब को माफ किया जाता है ।

5.2. ये अपीलें क्रमशः भारत संचार निगम लिमिटेड, सेलुलर आपरेटर्स एसोसिएशन आफ इंडिया, एसोसिएशन आफ यूनीफेड टेलीकॉम सर्विस प्रोवाइडर्स आफ इंडिया, दि अथारिटी, मैसर्स सिसटेमा श्याम टेली सर्विसेज लिमिटेड और महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड द्वारा दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण द्वारा तारीख 28 मई, 2010 को पारित किए गए उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई हैं, जिसके द्वारा दूर-संचार अंतःसंबंध (पोर्ट प्रभार) संशोधन विनियम (2007 का 1) के विरुद्ध भारत संचार निगम लिमिटेड द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर की गई और प्राधिकरण को विनियमों पर नए सिरे से विचार करने का निदेश दिया और भारत संचार निगम लिमिटेड को निदेश दिया कि किसी आपरेटर से अन्तर्काल अर्थात् विनियमों के प्रवृत्त होने की तारीख और आदेश की तारीख के बीच की अवधि के दौरान किसी रकम का दावा न करे ।

5.3. अभिलेख के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि पोर्ट प्रभार दूर-संचार अंतःसंबंध (प्रभार और आमदनी बंटवारा) विनियम, 1999 की अनुसूची 3 में विहित किए गए, जो तारीख 28 मई, 1999 को प्रवृत्त हुए । खंड 8 के फलस्वरूप विनियमों को अंतःसंबंध करारों के संबंध में अध्यारोही प्रभाव दिया गया । महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड ने 1999 की सिविल रिट याचिका सं. 6543 (महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड बनाम भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण¹) में उच्च न्यायालय के समक्ष 1999 के विनियमों को चुनौती दी गई, जो उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 17 जनवरी, 2000 के आदेश द्वारा मंजूर की गई और यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 36 के अधीन बनाए गए विनियमों को अध्यारोही प्रभाव नहीं दिया जा सकता है । इसके पश्चात् प्राधिकरण ने दूर-संचार अंतःसंबंध (पोर्ट प्रभार) संशोधन विनियम (6/2001)

¹ ए. आई. आर. 2000 दिल्ली 208.

बनाए। पोर्ट प्रभार संशोधित विनियमों की अनुसूची में विनिर्दिष्ट किए गए थे। संशोधित विनियमों को 2002 की अपील सं. 11 और 2003 की अपील सं. 31 में चुनौती दी गई, जो दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण द्वारा क्रमशः तारीख 27 अप्रैल, 2005 और तारीख 3 मई, 2005 के आदेशों द्वारा मंजूर की गई।

5.4. दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के पूर्वोक्त आदेशों को दृष्टिगत करते हुए, प्राधिकरण ने पोर्ट प्रभारों के पुनर्विलोकन के लिए विभिन्न सेवा प्रदाताओं की प्रतिक्रिया मांगी। इस प्रक्रिया में, भारत संचार निगम लिमिटेड ने अंतःसंबंध करारों के निबंधनों और शर्तों या संविदात्मक दरों में परिवर्तन करने की प्राधिकरण की अधिकारिता पर आक्षेप उठाए। प्राधिकरण ने तारीख 2 फरवरी, 2007 को प्राइवेट दूर-संचार आपरेटरों द्वारा भारत संचार निगम लिमिटेड को संदत्त किए जाने वाले अपेक्षित पोर्ट प्रभारों को लगभग 23-29 प्रतिशत तक कम करते हुए दूर-संचार अंतःसंबंध (पोर्ट प्रभार) संशोधन विनियम (2007 का 1) जारी किया। भारत संचार निगम लिमिटेड ने तारीख 2 फरवरी, 2007 की अधिसूचना को 2007 की अपील सं. 4 में चुनौती दी। दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने तारीख 28 मई, 2010 के आदेश द्वारा भारत संचार निगम लिमिटेड की अपील को मंजूर किया और निदेश जारी किए, जिनके प्रति इसमें ऊपर निर्देश किया गया है।

2005 की सिविल अपील सं. 951-952.

6.1. प्राधिकरण द्वारा 2005 की सिविल अपील सं. 951 तारीख 21 अप्रैल, 2004 के उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने अधिनियम की धारा 11(1)(ख) के साथ पठित धारा 13 के अधीन जारी किए गए तारीख 31 दिसम्बर, 2003 के निदेश को प्रश्नगत करते हुए भारत संचार निगम लिमिटेड द्वारा फाइल की गई 2004 की अपील सं. 2 मंजूर की। प्राधिकरण द्वारा 2005 की सिविल अपील सं. 952 तारीख 10 अगस्त, 2004 के उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने तारीख 21 अप्रैल, 2004 के आदेश का पुनर्विलोकन करने के लिए फाइल की गई 2004 की याचिका सं. 2 खारिज कर दी।

6.2. प्राधिकरण ने यह जानकारी प्राप्त होने पर कि कुछ आपरेटर अंतःसंबंध उपयोग प्रभारों के असंदाय के कारण और ऐसे ही अन्य कारणों से अंतःसंबंध बिंदुओं को काट रहे हैं, धारा 11(1)(ख) के साथ पठित धारा 13 के अधीन तारीख 31 दिसम्बर, 2003 को सभी सेवा प्रदाताओं को इतिला देते हुए निदेश जारी किए कि अंतःसंबंधों का काटना वांछनीय नहीं है क्योंकि इससे ग्राहकों को असुविधा होगी और सभी विवाद आपसी बातचीत के द्वारा सुलझाए जाने चाहिए। यह भी उपबंधित किया गया कि यदि विवाद सुलझाए नहीं जा सकें तो चूक करने वाले पक्षकार को कनेक्शन काटने का दस दिन का नोटिस दिया जाए और एक प्रति प्राधिकरण को भेजी जाए। प्राधिकरण द्वारा मध्यक्षेप नहीं करने की स्थिति में व्यथित पक्षकार अंतःसंबंध कनेक्शन काट सकता है या मामले का अवधारण करने के लिए प्राधिकरण को समावेदन कर सकता है।

6.3. भारत संचार निगम लिमिटेड ने पूर्वोक्त निदेश को इस आधार पर खारिज करने के लिए 2004 की अपील सं. 2 फाइल की कि विवादों का विनिश्चय करने के लिए अधिकारिता केवल दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण में निहित है और प्राधिकरण को इस मामले में कोई अधिकारिता नहीं है। दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने अपील मंजूर की और यह अभिनिर्धारित किया कि प्राधिकरण को सेवा प्रदाताओं के बीच विवाद को ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं है। दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने यह उल्लेख किया कि प्राधिकरण द्वारा जारी किए गए निदेश में “विवाद” और “अवधारण” शब्द प्रयोग किए हैं और भारतीय सेलुलर आपरेटर्स एसोसिएशन बनाम भारत संघ¹ वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण की अधिकारिता अति व्यापक है और केवल तीन दृष्टान्तों अर्थात् एकाधिकार अवरोधक व्यापारिक व्यवहार आयोग, उपभोक्ता पीठ और तार अधिनियम की धारा 7-ख के अधीन आने वाले विवादों में ही परिसीमित है।

6.4. प्राधिकरण ने 2004 की पुनर्विलोकन याचिका सं. 2 फाइल की और यह दलील दी कि प्राधिकरण को “विवाद” और “अवधारण” शब्द का प्रयोग करने का दोषी माना जा सकता हो, किंतु इसकी मध्यक्षेप करने की शक्ति को प्रश्नगत नहीं किया जा सकता है। प्राधिकरण द्वारा किया गया

¹ (2003) 3 एस. सी. सी. 186.

एक अन्य अभिवाक् यह था कि धारा 36 के अधीन बनाए गए विनियम अधीनस्थ विधायन की प्रकृति के हैं और उनकी विधिमान्यता को दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के समक्ष प्रश्नगत नहीं किया जा सकता है। दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण द्वारा तारीख 10 अगस्त, 2004 के आदेश द्वारा पुनर्विलोकन याचिका को यह दोहराते हुए खारिज कर दिया कि उसे विनियमों की विधिमान्यता संबंधी विवाद ग्रहण करने की अधिकारिता है।

2005 की सिविल अपील सं. 3298 और 4529

7.1. ये अपीलें क्रमशः भारत संचार निगम लिमिटेड और महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड द्वारा दूर-संचार अंतःसंबंध (अंतःसंबंध प्रस्थापना निर्देश) विनियम, 2002 (2002 का 2) के खंड 3.1 को चुनौती देते हुए फाइल की गई 2002 की अपील सं. 11 और 12 में दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण द्वारा तारीख 27 अप्रैल, 2005 को पारित किए गए आदेश के विरुद्ध फाइल की गई हैं।

7.2. प्राधिकरण ने असंशोधित अधिनियम की धारा 11(1)(ग) और (घ) के साथ पठित धारा 36 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए तारीख 17 सितम्बर, 1999 को कॉल करने वाला पक्ष संदाय करे व्यवस्था (कालिंग पार्टी पेज रजिस्ट्रम) के अधीन सेवा प्रदाताओं के लिए आमदनी हिस्सेदारी विहित की। इसे दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई। उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय [महानगर निगम लिमिटेड बनाम भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण] (उपरोक्त) में यह मत व्यक्त किया कि प्राधिकरण को संविदाओं या अनुज्ञप्तियों के अधीन आने वाले पक्षकारों के अधिकारों को बदलने या परिवर्तित करने की कोई शक्ति नहीं है।

7.3. उच्च न्यायालय के निर्णय के पश्चात् तारीख 24 जनवरी, 2000 के अध्यादेश द्वारा अधिनियम में संशोधन किया गया और सेवा प्रदाताओं के बीच अंतःसंबद्धता के निबंधनों और शर्तों को नियत करने के लिए धारा 11(1)(ख)(ii) पुरःस्थापित की गई।

7.4. प्राधिकरण ने धारा 11(1)(ख)(ii), (iii) और (iv) के साथ पठित धारा 36 के अधीन अपने में निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए 2002 के विनियम बनाए। इन विनियमों के खंड 3.1 के अधीन, महत्वपूर्ण बाजार हिस्सेदारी रखने वाले सेवा प्रदाताओं से विनियमों के जारी होने के

नब्बे दिन के भीतर अपने अंतःसंबंध प्रस्थापना निर्देश (आरआईओ) प्राधिकरण के पूर्व अनुमोदन से प्रकाशित करने की अपेक्षा की गई। विनियम, 2002 में उस व्यापक ढांचे, संरचना और उपबंधों का अनुबंध किया गया है जिन पर सेवा प्रदाता को अन्य सेवा प्रदाताओं के साथ अंतःसंबद्धता की प्रस्थापना करनी होगी। भारत संचार निगम लिमिटेड ने प्रस्तावित अंतःसंबंध प्रस्थापना निर्देश तारीख 12 जुलाई, 2002 को प्रस्तुत किए। महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड ने भी प्रस्तावित अंतःसंबंध प्रस्थापना निर्देश किसी समय वर्ष 2002 में ही प्रस्तुत किए। भारत संचार निगम लिमिटेड और महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड के अंतःसंबंध प्रस्थापनाओं के निर्देश को कतिपय परिवर्तनों के साथ अनुमोदित किया गया, जो तारीख 9 अक्टूबर, 2002 के एक समान शब्दों वाले पत्रों द्वारा प्रभावी हुए।

7.5. भारत संचार निगम लिमिटेड और महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड ने प्राधिकरण द्वारा जारी किए गए तारीख 9 अक्टूबर, 2002 के पत्र को चुनौती देते हुए 2002 की अपील सं. 11 और 12 फाइल की। अन्य बातों के साथ-साथ यह दलील दी गई कि अंतःसंबंध प्रस्थापना निर्देश में सुझाए गए परिवर्तन अपारदर्शी हैं और प्राधिकरण को विनियमों की आड़ में उस अंतःसंबद्धता के निबंधनों और शर्तों को नियत करने की शक्ति प्रदत्त नहीं की जा सकती है, जिसकी प्रस्थापना भारत संचार निगम लिमिटेड और महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड अन्य सेवा प्रदाताओं को कर सकता है। खंड 3.1 को उस सीमा तक चुनौती दी गई जहां तक इसका अधिनियम के अधीन प्रदान किए गए अपील के कानूनी अधिकार का हनन करने वाला निर्वचन किया गया है।

7.6. दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने तारीख 27 अप्रैल, 2005 के आदेश द्वारा दोनों अपीलों का निपटारा किया। दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने 2004 की अपील सं. 2 (भारत संचार निगम लिमिटेड बनाम भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण) और 2005 की अपील सं. 3 में की पुनर्विलोकन याचिकाओं में पारित किए गए आदेशों को विस्तारपूर्वक निर्दिष्ट करने के साथ-साथ दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश को भी निर्दिष्ट किया, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण उन अपीलों को सुनने के लिए सशक्त है जिनमें धारा 36 के अधीन बनाए गए विनियमों की विधिमान्यता को चुनौती दी गई। दूर-संचार

विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम के संशोधन के पश्चात् भी प्राधिकरण के पास सेवा प्रदाताओं द्वारा किए गए अंतःसंबंध करारों के निबंधनों और शर्तों में संशोधन करने या उन्हें अभिभावी करने की शक्ति नहीं है।

2005 की सिविल अपील सं. 3299 और 6049 तथा 2006 की सिविल अपील सं. 802

8.1. ये अपीलें दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के तारीख 3 मई, 2005 के उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई हैं, जिसके द्वारा उसने 2003 की अपील सं. 31 मंजूर की और 2004 की याचिका सं. 20 भागतः मंजूर की तथा प्राधिकरण द्वारा तारीख 22 जुलाई, 2003 को जारी किए गए निदेश को इस आधार पर अभिखंडित कर दिया कि उसे अभिभावी करने और प्रत्यक्ष अंतःसंबद्धता को आज्ञापक बनाने की शक्ति नहीं है।

8.2. विभिन्न सेवा प्रदाताओं के बीच प्रत्यक्ष संबद्धता राष्ट्रीय दूर-संचार नीति (एनटीपी), 1999 को ध्यान में रखते हुए पुरःस्थापित की गई थी और विद्यमान अनुज्ञप्तिधारियों के अनुज्ञप्ति करारों में इसका उपबंध तारीख 29 जनवरी, 2001 के संशोधन के माध्यम से दूर-संचार विभाग के तारीख 9 अगस्त, 2000 के उस पत्र के अनुसार किया गया था जिसमें यह कहा गया था कि प्रत्यक्ष संबद्धता आपसी करारों के आधार पर टरमिनेटिंग ट्रैफिक के प्रयोजन के लिए अनुज्ञात की जाती है। इसी बीच, तारीख 29 सितम्बर, 2000 को भारत संचार निगम लिमिटेड को सेलुलर मोबाइल सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए अनुज्ञप्ति प्रदान की गई और उसने अक्टूबर, 2002 में अपनी सेलवन सेलुलर सेवाएं शुरू कीं।

8.3. सेवा प्रदाताओं के बीच अंतःसंबद्धता के निबंधनों और शर्तों को नियत करने की शक्ति को सम्मिलित करने के लिए तारीख 24 जनवरी, 2000 के अध्यादेश द्वारा अधिनियम का संशोधन किया गया [संशोधित अधिनियम की धारा 11(1)(ख)(ii)]।

8.4. प्राधिकरण ने तारीख 12 जुलाई, 2002 को दूर-संचार अंतःसंबंध (अंतःसंबंध प्रस्थापना निर्देश) विनियम, 2002 जारी किए और अंतःसंबंध गेटवे स्विच का विचार प्रस्तुत किया। प्राधिकरण ने तारीख 15 मई, 2003 को एक परामर्श-पत्र यह उल्लेख करते हुए जारी किया गया कि यदि पक्षकारों में से कोई प्रत्यक्ष अंतःसंबंध की मांग करता है, तो उसे विनियमों

द्वारा आज्ञापक बनाए जाने की आवश्यकता है। प्राधिकरण ने तारीख 30 जून, 2003 को प्रत्यक्ष अंतःसंबद्धता पर चर्चा करने के लिए पणधारियों का आह्वान किया। उसके पश्चात्, प्राधिकरण ने तारीख 22 जुलाई, 2003 को अधिनियम की धारा 13 के अधीन सभी सेवा प्रदाताओं को निदेशित करते हुए निदेश जारी किए कि उनके बीच प्रत्यक्ष संबद्धता शीघ्रातिशीघ्र किंतु तीन माह से पूर्व की जाए ताकि नेटवर्क की दक्षता और उपभोक्ताओं के हित को संप्रवर्तित किया जा सके।

8.5. भारत संचार निगम लिमिटेड ने तारीख 22 जुलाई, 2003 के निदेश को इस आधार पर चुनौती देते हुए 2003 की अपील सं. 31 फाइल की कि यह निदेश बेसिक और सेलुलर आपरेटरों के अनुज्ञप्ति करारों के निबंधनों और शर्तों के प्रतिकूल है।

8.6. प्राधिकरण ने सेवा प्रदाताओं के बीच प्रत्यक्ष संबद्धता को आज्ञापक बनाते हुए तारीख 29 अक्टूबर, 2003 को अंतःसंबंध उपयोग प्रभार विनियम जारी किए। अनुसूची 2 के खंड (ख) के अनुसार, प्रभार आपसी बातचीत के द्वारा उद्गृहीत किए जा सकेंगे किंतु वे 0.20/- रुपए से कम होंगे। भारत संचार निगम लिमिटेड ने सेलुलर मोबाइल नेटवर्क से भारत संचार निगम लिमिटेड द्वारा अन्य सेलुलर नेटवर्क पर भेजी गई कॉल के लिए 0.4/- रुपए प्रति मिनट का प्रभार उद्गृहीत करने के लिए तारीख 28 जनवरी, 2004 को परिपत्र जारी किया। इस प्रभार में 0.30/- रुपए कॉल समाप्ति के और 0.19/- रुपए कॉल पारगमन के सम्मिलित थे।

8.7. प्राधिकरण ने तारीख 13 अप्रैल, 2004 को प्रत्यक्ष संबद्धता के अनुकूल्य के रूप में अंतःसंबंध एक्सचेंज की बात कहते हुए बहु-आपरेटर बहु-सेवा दृश्यविधान (मल्टी-आपरेटर मल्टी-सर्विस सेनेरियो) के लिए अंतःसंबंध एक्सचेंज-सह-अंतःवाहक बिलिंग समाशोधन गृह की बात पर परामर्श-पत्र निर्माचित किया।

8.8. सेलुलर आपरेटर्स एसोसिएशन आफ इंडिया ने भारत संचार निगम लिमिटेड के सेलवन के विरुद्ध सेलुलर सेवा प्रदाताओं से प्रत्यक्ष तौर पर संबद्धता करने और 0.19/- रुपए के पारगमन (ट्रान्जिट) प्रभार की रकम, जिसकी भारत संचार निगम लिमिटेड का बेसिक सेवा मंडल मांग कर रहा है और संगृहीत कर रहा है, की अपेक्षा करते हुए जारी किए गए भारत संचार निगम लिमिटेड के परिपत्र को अभिखंडित करने के निदेश जारी करने की ईप्सा करते हुए 2004 की याचिका सं. 20 फाइल की।

8.9. दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने 2003 की अपील सं. 31 मंजूर की और 2004 की याचिका सं. 20 भागतः मंजूर की तथा तारीख 22 जुलाई, 2003 के निदेश को इस आधार पर अभिखंडित कर दिया कि प्राधिकरण वर्ष 2000 के संशोधन के पश्चात् जारी की गई अनुज्ञप्ति में उपांतरण करने वाला निदेश जारी नहीं कर सकता है। दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि अंतःसंबद्धता के निबंधनों और शर्तों को नियत करना और प्रभावी अंतःसंबद्धता सुनिश्चित करना प्राधिकरण का धारा 11(1)(ख)(ii) और (iii) के अधीन विधायिकी आज्ञा का भाग है। दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने 2002 की अपील सं. 11 और 12 में तारीख 27 अप्रैल, 2005 को पारित किए गए अपने पूर्ववर्ती आदेश को निर्दिष्ट किया और यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम का संशोधन **महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड बनाम भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण** (उपरोक्त) वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित की गई विधि को अभिभावी नहीं करता है। दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि प्राधिकरण में निहित शक्ति का प्रयोग वर्ष 2000 के संशोधन के पश्चात् जारी की गई अनुज्ञप्तियों में किए गए अंतःसंबद्धता के निबंधनों और दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय में अधिकथित किए गए सिद्धांतों के सामंजस्य में किया जा सकता है। सेलुलर आपरेटर्स एसोसिएशन आफ इंडिया के दावे के संबंध में दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि भारत संचार निगम लिमिटेड का लेवल 1 टीएएक्स से पीएसटीएन नेटवर्क में कॉल की समाप्ति होने या अन्य सेवा प्रदाताओं के नेटवर्क को अंतःसंबद्धता उपलब्ध कराने के लिए 0.19/- रुपए के पारगमन प्रभार का संग्रहण करने का कार्य न्यायसंगत था, किंतु लेवल 1 टीएएक्स से सेलवन गेटवे एमएससी तक कॉल पारगमन के लिए 0.19/- रुपए पारगमन प्रभार प्रभारित करना न्यायसंगत नहीं था। दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्राधिकरण भारत संचार निगम लिमिटेड को प्रत्यक्ष संबद्धता को कार्यान्वित करने के लिए निदेश नहीं दे सकता है क्योंकि उसके पास न तो धारा 13 के अधीन जारी किए गए निदेश द्वारा और न ही धारा 36 के अधीन बनाए गए विनियम द्वारा इसे आज्ञापक बनाकर अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों पर अभिभावी करने की शक्ति है।

2005 की अपील सं. 5834-5836 और 5837

9.1. ये अपीलें दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण द्वारा तारीख 27 अप्रैल, 2005 को पारित किए गए उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई हैं, जिसके द्वारा उसने एसोसिएशन आफ बेसिक टेलीकॉम आपरेटर्स और अन्य द्वारा फाइल की गई 2001 की याचिका सं. 9 और सेलुलर आपरेटर्स एसोसिएशन आफ इंडिया द्वारा फाइल की गई 2001 की याचिका सं. 3 मंजूर की और प्राइवेट बेसिक सेलुलर आपरेटर्स द्वारा फाइल की गई 2003 की याचिका सं. 12 वापस लेने पर खारिज की गई तथा भारत संचार निगम लिमिटेड द्वारा फाइल की गई 2002 की अपील सं. 5 खारिज की गई ।

9.2. बेसिक अनुज्ञप्तिधारियों द्वारा दूर-संचार विभाग (जो अब भारत संचार निगम लिमिटेड है) को एसटीडी कॉल के लिए 0.64/- रुपए प्रति एमसीयू की दर से संदत्त किए जाने वाले पहुंच प्रभारों का तारीख 16 जनवरी, 1995 को जारी किए गए निविदा दस्तावेजों में उपबंध किया गया था । तारीख 27 मई, 1996 को एसटीडी कॉल के लिए 0.50/- रुपए और आईएसडी कॉल के लिए 0.70/- रुपए प्रति एमसीयू प्रभार कम करते हुए विशुद्धिकरण जारी किया गया ।

9.3. वर्ष 1997-1998 में बेसिक आपरेटर्स और तत्कालीन दूर-संचार विभाग के बीच अंतःसंबंध करारों पर अंतःसंबंध प्रभारों के संदाय का उपबंध करते हुए हस्ताक्षर किए गए, जिसमें तीन वर्ष की अवधि के लिए न्यूनतम 54,000/- रुपए वार्षिक प्रति पीसीएम समाप्ति पोर्ट प्रभार और उसके पश्चात् वास्तविक/पूर्ण लागत आधारित दर, और एसटीडी कॉल के लिए 0.50/- रुपए प्रति एमसीयू और आईएसडी कॉल के लिए 0.70/- रुपए प्रति एमसीयू की दर से पहुंच प्रभार भी सम्मिलित था । तारीख 1 अगस्त, 1999 से सभी बेसिक सेलुलर आपरेटर नियत अनुज्ञप्ति फीस व्यवस्था के बजाय आमदनी बंटवारा व्यवस्था में आ गए । दूर-संचार विभाग द्वारा सेलुलर मोबाइल सेवा प्रदाताओं के लिए पोर्ट प्रभार तारीख 27 सितम्बर, 1996 और तारीख 5 जून, 1998 के परिपत्रों द्वारा विहित किए गए और उसने पोर्ट प्रभारों की गणना के लिए वही व्यवस्था विस्तारित की जो प्राइवेट बेसिक सेलुलर आपरेटर्स से सेलुलर मोबाइल सेवा प्रदाताओं के साथ हस्ताक्षरित अंतःसंबंध करारों में अंतर्विष्ट की गई थीं ।

9.4. प्राधिकरण ने तारीख 28 मई, 1999 की अधिसूचना द्वारा दूर-संचार अंतःसंबंध (प्रभार और आमदनी बंटवारा) विनियम, 1999 (जिसे इसमें इसके पश्चात् “अंतःसंबंध विनियम, 1999” कहा गया है) जारी किए, जिनके द्वारा पोर्ट प्रभारों के साथ-साथ पहुंच प्रभार भी कम कर दिए गए। विनियमों के खंड 8 में यह उपबंध किया गया कि विनियमों का आपरेटरों और दूर-संचार विभाग/भारत संचार निगम लिमिटेड के बीच हुए अंतःसंबंध करारों पर अध्यारोही प्रभाव होगा। अंतःसंबंध विनियम, 1999 जारी होने के परिणामस्वरूप दूर-संचार विभाग ने पोर्ट प्रभारों और पहुंच प्रभारों में परिवर्तन करते हुए तारीख 1 अक्टूबर, 1999, 12 अक्टूबर, 1999 और 25 अक्टूबर, 1999 को परिपत्र जारी किए। दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा **महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड बनाम भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण** (उपरोक्त) वाले मामले में इस खंड को अभिखंडित कर दिया गया।

9.5. भारत संचार निगम लिमिटेड ने तारीख 1 अक्टूबर, 2000 को अपने सृजन के पश्चात्, संबंधित आपरेटर द्वारा किए गए वास्तविक कार्य पर निर्भर संदाय व्यवस्था करके पहुंच प्रभारों में बढ़ोतरी करने का अनुरोध करते हुए तारीख 28 अप्रैल, 2001 और तारीख 31 अप्रैल, 2001 की संसूचनाएं जारी कीं। बेसिक सेलुलर आपरेटरों ने इस बढ़ोतरी को आक्षेपित करते हुए प्राधिकरण को एक अभ्यावेदन दिया।

9.6. एसोसिएशन आफ यूनाइटेड टेलीकॉम सर्विस प्रोवाइडर्स आफ इंडिया ने तारीख 28 अप्रैल, 2001 और तारीख 31 मई, 2001 की संसूचनाओं को चुनौती देते हुए दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के समक्ष 2001 की याचिका सं. 9 फाइल की। तारीख 10 जुलाई, 2001 के अंतरिम आदेश द्वारा एसोसिएशन आफ यूनाइटेड टेलीकॉम सर्विस प्रोवाइडर्स आफ इंडिया को गृहीत रकमों का संदाय जारी रखने का निदेश दिया गया। एसोसिएशन आफ यूनाइटेड टेलीकॉम सर्विस प्रोवाइडर्स आफ इंडिया ने अंतःसंबंध विनियम, 1999 के अधीन उपबंधित पोर्ट प्रभार और पहुंच प्रभार संदत्त किए और इसलिए भारत संचार निगम लिमिटेड ने अंतःसंबंध करारों के आधार पर परिकलित रकमों की वसूली के लिए तारीख 2 नवम्बर, 2011 और तारीख 21 नवम्बर, 2011 के परिपत्र यह उल्लेख करते हुए जारी किए कि दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय को दृष्टिगत करते हुए दूर-संचार विभाग द्वारा अंतःसंबंध विनियम, 1999 के आधार पर तारीख 12 अक्टूबर, 1999 को जारी किया गया पत्र अकृत और

शून्य हो गया है। इस परिपत्र के अनुसार, भारत संचार निगम लिमिटेड ने सेलुलर मोबाइल सेवा प्रदाताओं से उद्गृहीत किए जाने वाले पोर्ट प्रभारों को तारीख 1 मई, 1999 से पूर्व विद्यमान दरों पर भूतलक्षी प्रभाव अर्थात् 1 मई, 1999 से परिवर्तित कर दिया। उसके उपरांत एसोसिएशन आफ यूनाइटेड टेलीकॉम सर्विस प्रोवाइडर्स आफ इंडिया ने 2001 की याचिका सं. 9 संशोधित की और पोर्ट प्रभारों की लागू दरों के अतिरिक्त तारीख 2 नवम्बर, 2001 के परिपत्र को चुनौती दी। सेलुलर आपरेटर्स एसोसिएशन आफ इंडिया ने तारीख 2 नवम्बर, 2011 के परिपत्र को अभिखंडित करने के लिए अलग से 2002 की याचिका सं. 3 फाइल की।

9.7. उन याचिकाओं के लंबित रहने के दौरान, प्राधिकरण ने तारीख 14 दिसम्बर, 2001 को दूर-संचार अंतःसंबंध (प्रभार और आमदनी बंटवारा) विनियम, 2001 जारी किए, जो केवल पहुंच प्रभारों से संबंधित हैं। इन विनियमों को भारत संचार निगम लिमिटेड द्वारा 2002 की अपील सं. 5 में चुनौती दी गई। इसके पश्चात् प्राधिकरण ने तारीख 28 दिसम्बर, 2001 से पोर्ट प्रभारों की दरें नियत करते हुए दूर-संचार अंतःसंबंध (पोर्ट प्रभार) विनियम, 2001 जारी किए। इन विनियमों को सभी पक्षकारों द्वारा स्वीकार और अंगीकृत किया गया।

9.8. प्राइवेट बेसिक सेलुलर आपरेटर्स ने तारीख 28 दिसम्बर, 2001 के पोर्ट प्रभार विनियम जारी होने तक की अवधि के लिए पोर्ट प्रभारों की लागू दर को चुनौती देते हुए 2003 की याचिका सं. 12 फाइल की। दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने तारीख 27 अप्रैल, 2005 के आदेश द्वारा 2001 की याचिका सं. 9 और 2002 की याचिका सं. 3 मंजूर की और तारीख 2 नवम्बर, 2001 के परिपत्र को यह मत व्यक्त करते हुए अभिखंडित कर दिया कि इसमें उठाई गई मांगे निराधार हैं। दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि बेसिक सेलुलर आपरेटर और सेलुलर मोबाइल सेवा प्रदाता प्राधिकरण के पोर्ट प्रभार विनियम, 2001 प्रभावी होने तक दूर-संचार विभाग के तारीख 12 अक्टूबर, 1999 के पत्र के अनुसार प्रभारों का संदाय करने के दायी थे। दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने प्राइवेट बेसिक सेलुलर आपरेटर्स द्वारा फाइल की गई 2003 की याचिका सं. 12 वापस लेने पर खारिज कर दी गई। उसने भारत संचार निगम लिमिटेड द्वारा फाइल की गई 2002 की अपील सं. 5 भी खारिज कर दी और अंतःसंबंध विनियम, 2001 की विधिमान्यता को इस आधार पर मान्य ठहराया कि

पंहुच प्रभार व्यवस्था में निश्चितता लाने के लिए विनियम आवश्यक हो गए थे और यह नहीं कहा जा सकता है कि प्राधिकरण ने प्राइवेट आपरेटरों को समृद्ध बनाने के लिए अऋजुतापूर्वक या मनमाने रूप में कार्य किया है।

2006 की सिविल अपील सं. 2731, 2794 और 3504

10.1. प्राधिकरण ने अधिनियम की धारा 13 के अधीन तारीख 22 जुलाई, 2003 को सभी सेवा प्रदाताओं को निदेशित करते हुए यह निदेश जारी किए कि सेवा प्रदाताओं के बीच प्रत्यक्ष संबद्धता शीघ्रातिशीघ्र किंतु निदेश जारी होने से तीन मास से पूर्व की जाए जिससे कि नेटवर्क दक्षता और उपभोक्ताओं के हित संप्रवर्तित किया जा सकें।

10.2. भारत संचार निगम लिमिटेड ने तारीख 22 जुलाई, 2003 के निदेश को इस आधार पर चुनौती देते हुए कि यह निदेश बेसिक और सेलुलर आपरेटरों के अनुज्ञप्ति करारों के निबंधनों और शर्तों के प्रतिकूल हैं, 2003 की अपील सं. 31 फाइल की।

10.3. प्राधिकरण ने अक्टूबर, 2003 में सेवा प्रदाताओं के बीच प्रत्यक्ष संबद्धता को आज्ञापक बनाते हुए दूर-संचार अंतःसंबंध उपयोग प्रभार विनियम जारी किए। अनुसूची 2 के खंड (ख) के अनुसार, प्रभार परस्पर बातचीत के द्वारा इस शर्त के अधीन रहते हुए कि वे 0.20/- रुपए प्रति मिनट से अधिक नहीं होंगे, उद्गृहीत किए जा सकते हैं। भारत संचार निगम लिमिटेड ने सेलुलर मोबाइल नेटवर्क से अन्य सेलुलर नेटवर्क पर भारत संचार निगम लिमिटेड द्वारा भेजी गई कॉल के लिए 0.4/- रुपए प्रति मिनट का प्रभार उद्गृहीत करते हुए तारीख 28 जनवरी, 2004 का परिपत्र जारी किया। इस प्रभार में कॉल समाप्ति के निमित्त 0.30/- रुपए और पारगमन प्रभार के 0.19/- रुपए सम्मिलित हैं।

10.4. भारत संचार निगम लिमिटेड ने अपने दूर-संचार परिमण्डलों को भारत संचार निगम लिमिटेड सेलुलर नेटवर्क के साथ प्रत्यक्ष संबद्धता अनुज्ञात करने के अपने विनिश्चय को उन्हें सूचित करते हुए तारीख 2 जुलाई, 2004 को परिपत्र जारी किया। रिलायंस इंफोकॉम ऐसा ही एक यूएसएल आपरेटर था जिसने ऐसी संबद्धता की ईप्सा की थी। भारत संचार निगम लिमिटेड के तारीख 4 अगस्त, 2004 के परिपत्र द्वारा एनएलडी और आईएलडी आपरेटरों को सेलवन नेटवर्क के साथ प्रत्यक्ष संबद्धता स्थापित करने के लिए अनुज्ञात किया गया। तारीख 23 अगस्त, 2004 के परिपत्र द्वारा रिलायंस को एनएलडी आपरेटर/आईएलडी आपरेटर

के रूप में भारती टेलीवेंचर्स लिमिटेड के समान निबंधनों और शर्तों पर प्रत्यक्ष अंतःसंबंध दिया गया ।

10.5. सेलुलर आपरेटर्स एसोसिएशन आफ इंडिया ने भारत संचार निगम लिमिटेड के सेलवन के विरुद्ध सेलुलर सेवा प्रदाताओं से प्रत्यक्ष संबद्धता करने और 0.19/- रुपए के पारगमन प्रभार की रकम, जिसकी भारत संचार निगम लिमिटेड का बेसिक सेवा मंडल मांग कर रहा है और संगृहीत कर रहा है, की अपेक्षा करते हुए जारी किए गए भारत संचार निगम लिमिटेड के परिपत्र को अभिखंडित करने के निदेश जारी करने की ईप्सा करते हुए 2004 की याचिका सं. 20 फाइल की ।

10.6. दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने तारीख 3 मई, 2005 के आदेश द्वारा 2003 की अपील सं. 31 मंजूर की और तारीख 12 जुलाई, 2003 के निदेश को यह अभिनिर्धारित करते हुए अभिखंडित कर दिया कि प्रत्यक्ष संबद्धता को आज्ञापक बनाने वाले निदेश वर्ष 2000 के संशोधन के पश्चात् जारी की गई अनुज्ञप्तियों की अनुज्ञप्ति शर्तों में उपांतरण करने के कारण जारी किया गया था और इसलिए यह निदेश अधिनियम के उपबंध के अनुसार नहीं था । दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने 2004 की याचिका सं. 20 भागतः मंजूर की और यह अभिनिर्धारित किया कि भारत संचार निगम लिमिटेड का लेवल 1 टीएएक्स से सेलवन गेटवे एमएससी तक कॉल भेजने के लिए 0.19/- रुपए पारगमन प्रभार प्रभारित करने का कार्य न्यायसंगत नहीं था । पहले ही संगृहीत की जा चुकी रकम को वापस करने का अनुतोष मंजूर नहीं किया गया ।

10.7. प्राधिकरण ने दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के आदेश के अनुपालन में अधिनियम की धारा 11(1)(ख)(ii) और (iii) के साथ पठित धारा 36 के अधीन तारीख 8 जून, 2005 को भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण (भारत संचार निगम लिमिटेड के सेलवन टरमिनेटिंग ट्रैफिक के लिए पारगमन प्रभार) विनिमय, 2005 (2005 का 10) यह स्पष्ट करते हुए जारी किए कि भारत संचार निगम लिमिटेड द्वारा सेलुलर आपरेटर्स पर सेलवन ग्राहकों तक पहुंच के लिए वहां कोई पारगमन प्रभार उद्गृहीत नहीं किया जाएगा जहां कहीं सेलवन और प्राइवेट सेलुलर मोबाइल सेवा प्रदाता, दोनों ही, भारत संचार निगम लिमिटेड के एक ही स्विच से संबद्ध हैं ।

10.8. भारती टेलीवेंचर्स लिमिटेड ने भारत संचार निगम लिमिटेड को अधिकरण के तारीख 3 मई, 2005 के आदेश का फायदा देने के लिए तारीख 18 मई, 2005 का अभ्यावेदन दिया। उसने प्राधिकरण को भी स्थिर लाइन सेवा प्रदाताओं को अधित्यजन का विस्तार करने हेतु तारीख 8 जून, 2005 के विनियमों में संशोधन करने के लिए तारीख 13 जून, 2005 को अभ्यावेदन प्रस्तुत किया। उसके उपरांत, तारीख 5 जुलाई, 2005 को भारती और भारत संचार निगम लिमिटेड के बीच अंतःसंबंध करार में नया परिशिष्ट पुरःस्थापित किया गया जो प्रत्यक्ष संबद्धता और पारगमन प्रभारों के संदाय के मुद्दे से संबंधित था।

10.9. भारत संचार निगम लिमिटेड ने तारीख 3 मई, 2005 के निर्णय का फायदा टाटा टेली सर्विसेज लिमिटेड को मई, 2005 में इस आधार पर दिया कि वह सेलुलर आपरेटरों की तरह ही अवस्थित है। तथापि, भारत संचार निगम लिमिटेड ने अक्टूबर, 2005 में इस फायदे को वापस ले लिया और यह मांग की कि टाटा 0.19/- रुपए का पारगमन प्रभार का इस आधार पर संदाय करे कि वह निर्णय का फायदा प्राप्त नहीं कर सकता है क्योंकि वह एक यूएस अनुज्ञप्तिधारी है न कि सेलुलर मोबाइल सेवा प्रदाता।

10.10. भारत संचार निगम लिमिटेड ने तारीख 13 मार्च, 2005 को रिलायंस इंफोकॉम लिमिटेड को अंतःसंबंध करार का एक प्रारूप परिशिष्ट प्रेषित किया। पक्षकारों द्वारा इस पर तारीख 17 नवम्बर, 2005 को एनएलडी सेवाओं के लिए और तारीख 6 जनवरी, 2006 को यूएसएल आपरेटर के रूप में हस्ताक्षर किए गए। रिलायंस ने प्राधिकरण के समक्ष यूएस अनुज्ञप्तिधारियों पर भी तारीख 8 जून, 2005 के विनियम का विस्तीर्ण करने के लिए तारीख 30 अगस्त, 2005 को एक अभ्यावेदन फाइल किया। प्राधिकरण द्वारा तारीख 6 सितम्बर, 2005 को इस अनुरोध को ठुकरा दिया गया। दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण द्वारा सेवा प्रदाताओं के बीच ऋजु प्रतिस्पर्धा और पारस्परिकता को आज्ञापक बनाते हुए तारीख 11 नवम्बर, 2005 को पारित किए गए विनिश्चय और उसके पश्चात् सभी सेवा प्रदाताओं पर इस निर्णय को लागू करने के लिए प्राधिकरण के तारीख 16 नवम्बर, 2005 के निदेश, हालांकि जिसमें याची केवल सेलुलर आपरेटर ही थे, को ध्यान में रखते हुए, रिलायंस ने तारीख 12 दिसम्बर, 2005 को एक अन्य अभ्यावेदन फाइल किया, किंतु प्राधिकरण से कोई उत्तर नहीं मिला।

10.11. भारती टेलीवेंचर्स लिमिटेड ने तारीख 3 मई, 2005 के आदेश का फायदा देने और साथ ही विनियमों में उपांतरण करने तथा समान रूप में अवस्थित यूएस अनुज्ञप्तिधारियों को इसका फायदा देने की ईप्सा करते हुए 2005 की अपील सं. 8 फाइल की ।

10.12. दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने तारीख 10 फरवरी, 2006 के आदेश द्वारा अपील खारिज कर दी और यह अभिनिर्धारित किया कि पारगमन प्रभार का अवधारण भारती और भारत संचार निगम लिमिटेड के बीच तारीख 3 मई, 2005 के निर्णय के पश्चात् स्वेच्छा से हुए अंतःसंबंध करार द्वारा किया जाएगा । तथापि, दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने इस मुद्दे पर विचार नहीं किया कि क्या बेसिक सेवा प्रदाताओं को सेलुलर आपरेटरों के समान स्थिति में अवस्थित होना माना जा सकता है ।

10.13. भारती टेलीवेंचर्स लिमिटेड ने 2006 का पुनर्विलोकन आवेदन सं. 1 फाइल करके पूर्वोक्त आदेश को चुनौती दी, जिसे तारीख 3 मई, 2006 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया ।

10.14. टाटा टेली सर्विसेज लिमिटेड ने तारीख 3 मई, 2005 के आदेश का फायदा देने, भारत संचार निगम लिमिटेड की पारगमन प्रभार के रूप में 0.19/- रुपए की मांग को अपास्त करने और विनियमों में उपांतरण करने की प्रार्थना करते हुए 2005 की याचिका सं. 132 फाइल की । दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण द्वारा तारीख 3 मई, 2006 के आदेश द्वारा इस याचिका को इस आधार पर खारिज कर दिया कि भारती टेलीवेंचर्स लिमिटेड द्वारा फाइल की गई इसी प्रकार की अपील खारिज कर दी गई थी । दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण द्वारा रिलायंस इंफोकॉम लिमिटेड द्वारा फाइल की गई 2006 की अपील सं. 6 भी भारती टेलीवेंचर्स लिमिटेड और टाटा टेली सर्विसेज लिमिटेड वाले मामलों में पारित किए गए आदेशों का अवलंब लेते हुए खारिज कर दी गई ।

2007 की अपील सं. 4965-66 तथा 2008 की सिविल अपील सं. 177, 598 और 599

11.1. प्राधिकरण ने तारीख 6 जनवरी, 2005 को अंतःसंबंध उपयोग प्रभार विनियमों में चतुर्थ संशोधन जारी किया । इसके तुरंत पश्चात्, तारीख 29 जनवरी, 2005 को भारत संचार निगम लिमिटेड ने विनियमों को

कार्यान्वित करने के लिए उपाबंध-2 में यह उल्लेख करते हुए परिपत्र जारी किया कि अन्तरराष्ट्रीय रोमिंग कॉल के लिए भारत संचार निगम लिमिटेड और प्राइवेट आपरेटर के बीच आमदनी का बंटवारा 50 : 50 के अनुपात में होगा । सेलुलर आपरेटर्स एसोसिएशन आफ इंडिया ने इस परिपत्र के विरुद्ध तारीख 31 जनवरी, 2005, 7 फरवरी, 2005, 8 फरवरी, 2005 और 14 फरवरी, 2005 के अभ्यावेदन फाइल किए । प्राधिकरण ने भारत संचार निगम लिमिटेड को तारीख 31 जनवरी, 2005 को पत्र जारी करके रोमिंग कॉल सौंपने के लिए अलग ट्रंक ग्रुप के बारे में अंतःसंबंध उपयोग विनियमों के कार्यान्वयन पर चर्चा में हाजिर होने के लिए आमंत्रित किया । भारत संचार निगम लिमिटेड ने इस चर्चा को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय रोमिंग कॉल के लिए ट्रंक ग्रुप पर गठन को तारीख 14 फरवरी, 2005 तक और अन्तरराष्ट्रीय रोमिंग कॉल के लिए तारीख 7 फरवरी, 2005 तक आस्थगित करते हुए तारीख 1 फरवरी, 2005 का परिपत्र जारी किया । तारीख 8 फरवरी, 2005 और 14 फरवरी, 2005 के परिपत्रों द्वारा मामले को आगे 14 फरवरी, 2005 के लिए और फिर तारीख 28 फरवरी, 2005 के लिए आस्थगित किया गया ।

11.2. तथापि, प्राधिकरण ने तारीख 11 मार्च, 2005 को कुछ और पत्राचार करके रोमिंग सब्सक्राइबर ट्रैफिक पर एडीसी उद्गृहीत करने और आमदनी बंटवारे के मुद्दों पर सभी सेवा प्रदाताओं से टिप्पणियां मांगी । प्राधिकरण ने तारीख 17 मार्च, 2005 को टरमिनेटिंग नेटवर्क और विजिटिंग नेटवर्क के बीच आमदनी हिस्सेदारी के करार के मुद्दे पर विचार करने के लिए एक परामर्श-पत्र जारी किया । भारत संचार निगम लिमिटेड ने तारीख 10 मई, 2005 को इस पत्र पर अपनी टिप्पणी दी । इसी बीच, प्राधिकरण ने राष्ट्रीय कॉल पर 0.30/- रुपए प्रति मिनट और अन्तरराष्ट्रीय कॉल पर 3.25/- रुपए प्रति मिनट एडीसी लागू करते हुए तारीख 11 अप्रैल, 2001 को अंतःसंबंध उपयोग प्रभार विनियमों में पांचवां संशोधन जारी किया । भारत संचार निगम लिमिटेड द्वारा तारीख 9 मई, 2005 के परिपत्र द्वारा संशोधन को कार्यान्वित किया गया । सेलुलर आपरेटर्स एसोसिएशन आफ इंडिया द्वारा इस संशोधन को, जहां तक यह एडीसी लागू करने से संबंधित था, 2005 की अपील सं. 7 में चुनौती दी गई, जो तारीख 21 सितम्बर, 2005 के आदेश द्वारा मंजूर की गई । उसके पश्चात् भारत संचार निगम लिमिटेड ने तारीख 13 अक्टूबर, 2005 के परिपत्र द्वारा तारीख 9 मई, 2005 के परिपत्र को व्यपहत कर लिया ।

11.3. प्राधिकरण ने तारीख 23 जून, 2006 को अंतःसंबंध उपयोग प्रभार विनियमों में छठा संशोधन जारी किया। भारत संचार निगम लिमिटेड ने छठे संशोधन के कार्यान्वयन के लिए तारीख 28 फरवरी, 2006 का परिपत्र जारी किया और रोमिंग कॉल के लिए उच्च टरमिनेशन प्रभार का उपबंध किया। उसके उपरांत सेलुलर आपरेटर्स एसोसिएशन आफ इंडिया ने रोमिंग कॉल के लिए उच्च टरमिनेशन प्रभार लगाए जाने के संबंध में भारत संचार निगम लिमिटेड और प्राधिकरण के समक्ष शिकायतें फाइल कीं। प्राधिकरण ने भारत संचार निगम लिमिटेड को सेलुलर आपरेटर्स एसोसिएशन आफ इंडिया और मैसर्स बीपीएल द्वारा फाइल की गई शिकायतों के साथ तारीख 20 अप्रैल, 2006 का पत्र जारी किया। भारती की शिकायत को भी तारीख 24 अप्रैल, 2006 के पत्र द्वारा अग्रेषित किया गया। प्राइवेट आपरेटर्स के साथ मामले पर चर्चा करने के लिए सहमत होने के बावजूद भारत संचार निगम लिमिटेड ने परिपत्र के अनुसार बिल भेजने आरंभ कर दिए। सेलुलर आपरेटर्स एसोसिएशन आफ इंडिया ने इन मांगों के विरुद्ध तारीख 24 मई, 2006 और तारीख 12 जून, 2006 के अभ्यावेदन दिए। भारत संचार निगम लिमिटेड ने तारीख 28 अप्रैल, 2006 के पत्र द्वारा प्राधिकरण के पत्र का यह कथन करते हुए उत्तर दिया कि अनुज्ञप्ति करारों में आमदनी हिस्सेदारी का उपबंध है और परिपत्र पूर्ण रूप से इसके अनुसार है।

11.4. प्राधिकरण ने तारीख 11 सितम्बर, 2006 के विनिश्चय द्वारा रोमिंग कॉल के संबंध में आमदनी हिस्सेदारी के लिए भारत संचार निगम लिमिटेड का दावा नामंजूर कर लिया और उसे निदेश दिया कि अंतःसंबंध उपयोग प्रभार विनियमों में विहित किए गए अनुसार राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय रोमिंग कॉल के टरमिनेशन के लिए 0.30/- रुपए प्रभारित करे।

11.5. भारत संचार निगम लिमिटेड ने प्राधिकरण के तारीख 11 सितम्बर, 2006 के विनिश्चय को अधिकारिता के अभाव के आधार पर चुनौती देते हुए 2006 की अपील सं. 14 फाइल की। सेलुलर आपरेटर्स एसोसिएशन आफ इंडिया ने भी प्राधिकरण के विनिश्चय को, जहां तक इसे भूतलक्षी बनाया गया था, चुनौती देते हुए 2006 की अपील सं. 16 फाइल की।

11.6. अपीलों के लंबित रहने के दौरान प्राधिकरण ने राष्ट्रीय रोमिंग कॉल के लिए अधिकतम अनुज्ञेय प्रभार नियत करते हुए तारीख 24

जनवरी, 2007 को दूरसंचार प्रशुल्क (चवालीसवां संशोधन) आदेश, 2007 अधिसूचित किया।

11.7. दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने पक्षकारों को सुनने के पश्चात् तारीख 24 अगस्त, 2007 के आदेश द्वारा 2006 की अपील सं. 14 और 16 तथा 2006 की याचिका सं. 319 खारिज कर दीं और यह अभिनिर्धारित किया कि प्राधिकरण द्वारा किया गया विनिश्चय विधिक रूप से सही और न्यायसंगत है।

11.8. प्राधिकरण ने तारीख 24 अगस्त, 2007 के आदेश में सुधार के लिए पैरा 6 पंक्ति 12 से “स्वीकार” और पैरा 9 पंक्ति 24 से “और अनुशंसात्मक है” शब्दों को हटाने के लिए 2007 का प्रकीर्ण आवेदन सं. 121 फाइल किया। तारीख 12 सितम्बर, 2007 के आक्षेपित आदेश द्वारा प्रकीर्ण आवेदन को मंजूर किया गया तथा “और अनुशंसात्मक है” शब्दों को हटाया गया। दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 11(1)(ख) में प्रगणित कृत्यों को अनुशंसात्मक शक्ति का भाग होना नहीं कहा जा सकता है, जो कि धारा 11(1)(क) में अंतर्विष्ट है।

11.9. सेलुलर आपरेटर्स एसोसिएशन आफ इंडिया और अन्य ने दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के तारीख 24 अगस्त, 2007 के आदेश के क्रियान्वयन और तारीख 11 सितम्बर, 2006 से प्राधिकरण के आदेश, जब यह जारी किया गया था, के फायदे का दावा करते हुए और इसकी प्रतिकूलता में संगृहीत की गई रकम के प्रतिदाय के लिए 2007 का ई. ए. सं. 21 फाइल किया। तारीख 28 नवम्बर, 2007 के आदेश द्वारा इस ई. ए. को मंजूर किया गया और भारत संचार निगम लिमिटेड को प्राधिकरण के तारीख 11 सितम्बर, 2006 के विनिश्चय से अधिक संगृहीत की गई रकमों का प्रतिदाय करने का निदेश दिया गया। अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि उसके आदेश के आधार पर प्राधिकरण का विनिश्चय भविष्यलक्षी प्रभाव से उस तारीख से प्रवृत्त होगा, जिस तारीख को यह आदेश जारी किया गया था और विशेष रूप से, कोई रोकदेश न होने की बात को ध्यान में रखते हुए भारत संचार निगम लिमिटेड प्राधिकरण के विनिश्चय के प्रतिकूल कोई राशि संग्रह करने के लिए हकदार नहीं था और वह अब अपनी ही गलती का फायदा नहीं ले सकता है।

2011 की सिविल अपील सं. 271-281

12.1. ये अपीलें दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण द्वारा तारीख 29 सितम्बर, 2010 को पारित कि गए उस निर्णय और आदेश को अपास्त करने के लिए फाइल की गई हैं, जिसके द्वारा उसने अपील सं. 4/2006, 6/2006, 5/2007, 5/2008 और 2-8/2009 का निपटारा किया और प्राधिकरण को अंतःसंबंध उपयोग प्रभार विनियमों से संबंधित मामले पर नए सिरे से विचार करने का निदेश देते हुए मामला प्रतिप्रेषित किया गया ।

12.2. प्राधिकरण ने तारीख 14 दिसम्बर, 2001 को दूर-संचार अंतःसंबंध (प्रभार और आमदनी बंटवारा) विनियम (2002 का विनियम सं. 5) – पहुंच प्रभार को विनियमित करने के लिए रूपरेखा – जारी किए । प्राधिकरण द्वारा दिसम्बर, 2001 में पोर्ट प्रभारों को विनियमित करने के लिए अलग-से विनियम जारी किए गए । प्राधिकरण ने तारीख 24 जनवरी, 2003 को दूर-संचार अंतःसंबंध उपयोग प्रभार विनियम, 2003 जारी किए, जिनके अनुसार समाप्ति प्रभार 0.30/- रुपए (महानगर के लिए) और 0.40/- रुपए (परिमण्डल के लिए) नियत किए गए । कुल क्षेत्रक आमदनी का 30 प्रतिशत पहुंच क्षरण प्रभार (एडीसी) अर्थात् प्राइवेट आपरेटरों द्वारा अलाभजनक क्षेत्रों में अपने स्थिर नेटवर्क स्थापित करने के लिए भारत संचार निगम लिमिटेड को उसके सहायताप्राप्त नेटवर्क को पार करने के लिए संदत्त की गई फीस की धारणा भी पुरःस्थापित की गई ।

12.3. 2003 के अंतःसंबंध उपयोग प्रभार विनियमों में विसंगतियां होने के बारे में सेलुलर आपरेटर एसोसिएशन आफ इंडिया के तारीख 4 फरवरी, 2003 का अभ्यावेदन प्राप्त होने पर प्राधिकरण ने तारीख 29 अक्टूबर, 2003 को इनका पुनर्विलोकन किया और समाप्ति प्रभार को कम करके एकसमान दर अर्थात् सभी प्रकार की कॉलों के लिए 0.30/- रुपए प्रति मिनट कर दिया गया और पहुंच क्षरण प्रभार (एडीसी) 10 प्रतिशत कर दिया गया । तथापि, सेलुलर आपरेटर्स एसोसिएशन आफ इंडिया द्वारा समाप्ति प्रभार की रकम में और कमी करने के लिए दिए गए अभ्यावेदन को प्राधिकरण द्वारा नामंजूर कर दिया गया ।

12.4. वर्ष 2005 और 2008 के बीच पांच संशोधन किए गए और पहुंच क्षरण प्रभार के संदाय के मामले में प्राधिकरण ने स्थानीय और लंबी दूरी की राष्ट्रीय कॉलों तथा मोबाइल टेलीफोन सेवाओं के लिए समाप्ति प्रभार 0.20/- रुपए प्रति मिनट नियत करते हुए अंतःसंबंध उपयोग प्रभार

(2009 का विनियम संशोधन) विनियम अधिसूचित किए। इन विनियमों को भारत संचार निगम लिमिटेड और विभिन्न प्राइवेट आपरेटरों द्वारा अलग-अलग अपील फाइल करके चुनौती दी गई, जिनका ब्यौरा नीचे दिया जा रहा है :-

अपील सं.	अपीलार्थी	अपील का ब्यौरा
6/2006	भारत संचार निगम लिमिटेड	भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण द्वारा पहुंच क्षरण प्रभार (ए. डी. सी.) के संदाय से इनकार करते हुए और बेतार नेटवर्क में समाप्त होने वाली कॉलों की लागत तार लाइन नेटवर्क की कॉलों का लगभग एक तिहाई होने पर एकसमान समाप्ति प्रभार के निर्धारण का अभिकथन करते हुए अंतःसंबंध उपभोग प्रभार विनियम, 2006 को चुनौती दी गई।
5/2007	भारत संचार निगम लिमिटेड	भारत संचार निगम लिमिटेड को संदेय पहुंच क्षरण प्रभार में कमी करने की सीमा तक और एक समान समाप्ति प्रभार (मोबाइल समाप्ति प्रभार और स्थिर समाप्ति प्रभार) नियत करने वाले तारीख 21 मार्च, 2007 को किए गए आठवें संशोधन को चुनौती दी गई।
5/2008	भारत संचार निगम लिमिटेड	भारत संचार निगम लिमिटेड को संदेय पहुंच क्षरण प्रभार (ए. डी. सी.) में कमी करने और एक समान समाप्ति प्रभार नियत करने की सीमा तक तारीख 27 मार्च, 2008 को किए गए नौवें संशोधन को चुनौती दी गई।
4/2006	सेलुलर आपरेटर्स एसोसिएशन आफ इंडिया	2006 के विनियमों को इस सीमा तक चुनौती देते हुए कि मोबाइल समाप्ति प्रभार 0.30/- रुपए प्रति मिनट रखे गए हैं जो कि भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण द्वारा अभिनिर्धारित किए गए अनुसार लागत के आधार पर नहीं हैं।
2/2009	भारत संचार निगम लिमिटेड	समाप्ति प्रभार और केरिज़ प्रभार नियत करने की सीमा तक तारीख 9 मार्च, 2009 के विनियम को अपास्त करने की ईप्सा करते हुए अपील।

3/2009	एसोसिएशन आफ यूनिफाइड टेलीकॉम सर्विस प्रोवाइडर्स आफ इंडिया	तारीख 9 मार्च, 2009 के विनियम को अपास्त करने की ईप्सा करते हुए और समाप्ति प्रभार, पारगमन प्रभार और पोर्ट प्रभार का पुनर्विलोकन करने के लिए ।
4/2009	वोडाफोन	तारीख 9 मार्च, 2009 के विनियम को अपास्त करने की ईप्सा करते हुए और समाप्ति प्रभार को कम करके 35 पैसे करने या भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण द्वारा नए सिरे से विचार करने के लिए उसे वापस भेजना । एफ. एल. एल. आर. आई. सी. का प्रयोग करते हुए एम. टी. सी. का अवधारण करना । “लागत प्रतिरूपण में अंतरराष्ट्रीय परिपाटी” जो कि भली-भांति स्थापित है, शीर्षक के अधीन सूचीबद्ध सीएपीईएक्स, ओपीईएक्स, सामान्य लागत और मूल्य से अधिक पूंजी लागत को विचार में लेना । एमटीसी का अवधारण करने में वीएएस सहित दूर-संचार सेवाओं के उपबंध से अर्जित समझी जा सकने वाली आमदनी की रकम को लागू करके इस लागत को परिवर्तित न करना ।
5/2009	मैसर्स भारती एयरटेल	वोडाफोन के समान । इसके अतिरिक्त, अंतरराष्ट्रीय रोमिंग पर समाप्ति प्रभार में वृद्धि करना ।
6/2009	मैसर्स आइडिया लिमिटेड और अन्य	मैसर्स भारती एयरटेल के समान ।
7/2009	मैसर्स एयरसेल लिमिटेड और अन्य	वोडाफोन के समान ।
8/2009	ऐटिसाल्ट डी. बी. टेलीकॉम (प्रा.) लिमिटेड	तारीख 9 मार्च, 2009 के विनियम को अपास्त करने की ईप्सा करते हुए । भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण को यह निदेश देना कि समाप्ति प्रभार को इस आधार पर पुनः पुरःस्थापित करना कि आपरेटर एक नया प्रवेशक है और रोल-आउट बाध्यताओं को पूरा किया है या नहीं ; एमटीसी 09 पैसे प्रति मिनट और एफटीसी 10 पैसे प्रति मिनट से अधिक अवधारित न करना ; टीएएक्स

		पारगमन प्रभार 02 पैसे से अधिक नियत न करना ; लंबी दूरी के केरिज़ प्रभार को कम करके 11 पैसे प्रति मिनट से अधिक कम न करना ; प्राप्तकर्ता दूर-संचार नेटवर्क पर अंतःसंबंध एसएमएस परिचलन की प्राप्ति के लिए “शून्य” प्रभार नियत करना ।
--	--	--

12.5. दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने तारीख 12 मई, 2009 के आदेश द्वारा अपील सं. 6/2006, 5/2007 और 5/2008 खारिज कर दी । तथापि, आक्षेपित आदेश द्वारा कुछ अपीलों का निपटारा किया गया और मामला प्राधिकरण को इस निदेश के साथ प्रतिप्रेषित किया गया कि मामले पर नए सिरे से विचार किया जाए और परामर्श प्रक्रिया समयबद्ध रीति में पूर्ण की जाए ताकि नए अंतःसंबंध उपयोग प्रभारों को तारीख 1 जनवरी, 2011 से प्रभावी/कार्यान्वित किया जा सके ।

2010 का अंतरित मामला सं. 39

13.1. अंतरित मामला 2007 की लेटर्स पेटेंट अपील सं. 337 है, जिसका शीर्षक भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण बनाम दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण और एक अन्य है, जो 2005 की रिट याचिका सं. 2838 में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा तारीख 23 दिसम्बर, 2005 को पारित किए गए आदेश के विरुद्ध दिल्ली उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष फाइल की गई थी ।

13.2. प्राधिकरण ने धारा (11)(1)(ख) (ii), (iii) और (iv) के अधीन तारीख 29 अक्टूबर, 2003 को दूर-संचार अंतःसंबंध उपयोग प्रभार विनियम, 2003 (2003 का 4) विनियमित किए । ये विनियम तारीख 25 नवम्बर, 2003, 12 दिसम्बर, 2003, 31 दिसम्बर, 2003 और 6 जनवरी, 2005 को संशोधित किए गए । अंतिम संशोधन द्वारा पहुंच क्षरण प्रभार (एक्सेस डेफिसिट चार्ज) प्रभारित करने की पद्धति और रीति में उपांतरण करने के लिए उपबंध किया गया ।

13.3. महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड ने वर्ष 2005 में किए गए संशोधन को इस आधार पर अभिखंडित करने के लिए 2006 की अपील सं. 3 फाइल की कि पहुंच क्षरण प्रभार की उसकी हकदारी को मनमाने तौर पर कम किया गया है । दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण द्वारा दिए गए नोटिस पर प्राधिकरण ने अधिकरण की अधिकारिता पर प्रारंभिक आक्षेप उठाए । दूर-संचार विवाद समाधान और

अपील अधिकरण ने अधिनियम के विभिन्न उपबंधों, कलेरियंट इंटरनेशनल लिमिटेड बनाम सिक्वोरिटी एक्सचेंज बोर्ड¹, सेलुलर आपरेटर्स एसोसिएशन आफ इंडिया बनाम भारत संघ² और पश्चिम बंगाल विद्युत विनियामक आयोग बनाम सी. ई. एस. सी. लिमिटेड³ वाले मामलों का अवलंब लिया और यह अभिनिर्धारित किया कि प्राधिकरण कानूनी उपबंधों की सीमा के भीतर विनियम बनाने के लिए सशक्त है और उसे उन विषयों की बाबत विनियम बनाने का प्राधिकार नहीं है जिनके लिए विनिर्दिष्ट रूप से उपबंध नहीं किया गया है और ऐसे विषयों में केवल दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण को निदेश जारी करने की अधिकारिता है ।

14. आगे अग्रसर होने से पूर्व, हम उस पृष्ठभूमि की अवेक्षा कर सकते हैं जिसमें अधिनियम, अधिनियमित किया गया था । भारत में प्रथम तार (टेलीग्राफ) संपर्क वर्ष 1939 में कलकत्ता और डायमंड हर्बर के बीच स्थापित किया गया था । वर्ष 1851 में, परिचलन के लिए तार लाइन को खोला गया, किंतु यह अधिकांशतः ईस्ट इंडिया कंपनी के कार्य तक ही सीमित थी । भारतीय तार अधिनियम वर्ष 1885 में अधिनियमित किया गया । इस अधिनियम ने केन्द्रीय सरकार को तार-यंत्रों को स्थापित करने, अनुरक्षण करने और कार्य करने का अनन्य विशेषाधिकार दिया, जो भारत के किसी भी भाग में तार नेटवर्क स्थापित करने के लिए प्राइवेट व्यक्तियों को अनुज्ञप्ति प्रदान करने के लिए भी सशक्त थी ।

15. स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात्, भारत सरकार ने दूर-संचार सेक्टर का संपूर्ण नियंत्रण ले लिया तथा इसे डाक और तार विभाग के अधीन लाया गया । देश में दूर-संचार सेवाओं में सुधार के लिए उठाया गया बड़ा कदम “इंडियन टेलीफोन इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड” के नाम में पब्लिक सेक्टर के अधीन बंगलौर में एक आधुनिक दूर-संचार विनिर्माण सुविधा केन्द्र स्थापित करना था । वर्ष 1984 दूर-संचार सेक्टर के विकास में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर था । उस वर्ष में, देशी प्रौद्योगिकी को विकसित करने के लिए टेलीमेटिक्स विकास केन्द्र (“सी-डोट”) स्थापित किया गया और ग्राहक-उपस्कर का विनिर्माण करने के लिए प्राइवेट सेक्टर को अनुज्ञप्तियां दी गईं । वर्ष 1986 में, महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड और विदेश संचार निगम लिमिटेड (“वीएसएनएल”) का गठन किया गया । वर्ष 1992 में, इलैक्ट्रानिक

¹ (2004) 8 एस. सी. सी. 524.

² (2003) 3 एस. सी. सी. 186.

³ (2002) 2 एस. सी. सी. 715.

डाक, वाक् डाक, आंकड़े सेवाएं, श्रव्य टैक्स सेवाएं, वीडियो टैक्स सेवाएं, वीडियो कांफ्रेंसिंग, रेडियो पेजिंग और सेलुलर चल टेलीफोन सेवाएं जैसी सेवाओं के लिए प्राइवेट विनिदान की अनुज्ञा देने का विनिश्चय किया गया ।

16. फरवरी, 1993 में, वित्त मंत्री ने अपने बजट भाषण में दूर-संचार में विशेषतः अन्तरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मक उद्योग के सृजन में प्राइवेट सेक्टर के अंतर्वहन और भागीदारी को बढ़ावा देने हेतु दूर-संचार विभाग के प्रयासों को सफल बनाने के लिए सरकार के आशय की घोषणा की । तारीख 13 मई, 1994 को राष्ट्रीय दूर-संचार नीति घोषित की गई, जिसे यह कहते हुए संसद् के पटल पर रखा गया कि इस नीति का लक्ष्य दूर-संचार सेवाएं प्रदान करने में दूर-संचार विभाग के प्रयास को सफल बनाना है । उस नीति के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित थे :-

“(i) सभी व्यक्तियों को दूर-संचार सुविधा देना और मांग पर दूरभाष की उपलब्धता को सुनिश्चित करना ;

(ii) सभी लोगों को कतिपय मूलभूत दूर-संचार सेवाएं सस्ते (अफोर्डेबल) और युक्तियुक्त मूल्य पर मुहैया कराना और सभी गांवों को इसके अंतर्गत लाना ;

(iii) विश्व स्तर की दूर-संचार सेवाएं देना ; उपभोक्ता शिकायतों पर ध्यान देना, विवाद समाधान और विशेष ध्यान देने के लिए जनता के रूबरू होना और उपभोक्ताओं की मांग की पूर्ति के लिए सेवाओं की व्यापकतम अनुज्ञेय रेंज प्रदान करना और वह भी युक्तियुक्त मूल्य पर ;

(iv) देश के आकार और विकास को ध्यान में रखते हुए एक बड़े विनिर्माणात्मक आधार का सृजन करना और दूर-संचार उपस्कर का बड़े स्तर पर आयात करना ; और

(v) देश की रक्षा और सुरक्षा हितों का संरक्षण करना ।”

17. दूर-संचार सेक्टर में प्राइवेट आपरेटरों के आने से इस सेक्टर का उचित विनियमन करना समुचित समझा गया । भारतीय दूर-संचार सेक्टर के संस्थागत सुधार में एक महत्वपूर्ण कदम स्वतंत्र विनियामक प्राधिकरण अर्थात् दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण का गठन करना था । प्रारंभ में, यह प्रस्थापित किया गया कि प्राधिकरण को एक अकानूनी निकाय के रूप में स्थापित किया जाए और इस प्रयोजन के लिए भारतीय तार (संशोधन) विधेयक, 1995 पुरःस्थापित किया गया और इसे लोक सभा द्वारा पारित

किया गया। तथापि, जब मामला राज्य सभा में आया तो सदस्यों ने यह मत व्यक्त किया कि प्राधिकरण को एक कानूनी निकाय के रूप में स्थापित किया जाना चाहिए। इसके साथ-साथ दूर-संचार पर स्थायी समिति की 22वीं रिपोर्ट को भी ध्यान में रखते हुए भारतीय दूर-संचार प्राधिकरण अध्यादेश, 1996 प्रख्यापित किया गया। **दिल्ली साइंस फोरम** बनाम **भारत संघ**¹ वाले मामले में इस न्यायालय ने अध्यादेश में अंतर्विष्ट कुछ उपबंधों का संज्ञान लिया और यह मत व्यक्त किया :-

“दूर-संचार सेक्टर में विविधता का सूत्रपात करने के लिए समुचित शक्तियों के साथ एक दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण की विद्यमानता अनिवार्य है। राष्ट्रीय दूर-संचार नीति पिछली शताब्दी के दौरान अपनाई गई परिपाटी से एक ऐतिहासिक प्रस्थान है। चूंकि प्राइवेट सेक्टर को अगले कुछ वर्षों में दूर-संचार विभाग/महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड की अपेक्षा दूर-संचार नेटवर्क के विकास में अधिक योगदान देना होगा, इसलिए समुचित शक्तियों के साथ एक ऐसे स्वतंत्र दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण की भूमिका पर बल देने की आवश्यकता नहीं है जो सामाजिक उद्देश्य के लिए निजी लाभ हेतु व्यक्तिगत अभिलाषा को पूरा कर सके। केन्द्रीय सरकार और दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण को निष्क्रिय न्यासधारियों की तरह व्यवहार न करके सार्वजनिक हित में एक सक्रिय न्यासधारी के रूप में कार्य करना होगा।”

(बल देने के लिए रेखांकित किया गया है)

18. वर्ष 1996 के अध्यादेश के स्थान पर अधिनियम लाया गया। प्राधिकरण को एक कानूनी निकाय के रूप में स्थापित करने का मुख्य प्रयोजन यह सुनिश्चित करना था कि उपभोक्ताओं के हित का संरक्षण हो और साथ-ही-साथ दूर-संचार, प्रसारण और केबल सेवाओं में ऐसी रीति में विकास का वातावरण सृजित हो जिससे कि भारत उभरते हुए वैश्विक सूचना समाज में अग्रणी भूमिका निभाने में समर्थ हो सके। प्राधिकरण के लक्ष्य और उद्देश्य निम्नलिखित हैं :-

(i) दूर-संचार घनत्व में वृद्धि करना और सस्ते (अफोर्डेबल) मूल्य पर देश में दूर-संचार सेवाओं तक पहुंच।

¹ (1996) 2 एस. सी. सी. 405.

(ii) ऐसी दूर-संचार सेवाएं उपलब्ध कराना जो रेंज, मूल्य और गुणवत्ता में तुलनात्मक रूप से विश्व में सर्वोत्तम हों ।

(iii) एक ऐसा उचित और पारदर्शी नीतिगत वातावरण उपलब्ध कराना जिससे समान अवसर संप्रवर्तित हो और ऋजु प्रतिस्पर्धा को सुकर बनाए ।

(iv) ऐसी अंतःसंबंध व्यवस्था स्थापित करना जो ऋजु, पारदर्शी, अविलंबित और साम्यापूर्ण अंतःसंबंध को मंजूरी दे ।

(v) टैरिफों को पुनःसंतुलित करना जिससे कि वहन क्षमता (अफोर्डेबिलिटी) और आपरेटर व्यवहार्यता एक संगत रीति में पूर्ण हो सके ।

(vi) उपभोक्ताओं के हित को संरक्षित करना और उपलब्धता, मूल्य और सेवा की गुणवत्ता और अन्य बातों से संबंधित उपभोक्ताओं की साधारण कठिनाइयों पर ध्यान देना ।

(vii) विभिन्न आपरेटरों द्वारा मुहैया कराई जा रही सेवा की गुणवत्ता को मानिटर करना ।

(viii) सकल लागत क्षेत्रों/सार्वजनिक दूरभाषों के निधिकरण के लिए एक प्रक्रिया उपलब्ध कराना जिससे कि दूर-संचार आपरेटरों द्वारा दूर-दराज और ग्राणीण क्षेत्रों में दूर-संचार सुविधाओं का विस्तार करने के लिए सार्वभौम सेवा बाध्यताओं का निर्वहन किया जा सके ।

(ix) सेवाओं और प्रौद्योगिकियों के समवाय युग के निर्विघ्न परिवर्तन के लिए स्थल तैयार करना ।

(x) वाणिज्यिक और गैर-वाणिज्यिक चैनलों के माध्यम से भारत में रेडियो की कवरेज में वृद्धि को संप्रवर्तित करना ।

(xi) टेलीविजन चैनलों को ग्रहण करने और आपरेटर, जो टेलीविजन और अन्य संबद्ध सेवाएं मुहैया कराएगा, का चयन करने में उपभोक्ता के विकल्प में वृद्धि करना ।

19. अधिनियम (असंशोधित) की प्रस्तावना और धारा 3, 11 से 14, 18, 33, 35, 36 और 37 निम्नलिखित हैं :-

“प्रस्तावना

दूर-संचार सेवाओं को विनियमित करने के लिए भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण की स्थापना का और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम ।

धारा 3. प्राधिकरण की स्थापना और निगमन – (1) ऐसी तारीख से जो केन्द्रीय सरकार, अधिसूचना द्वारा, नियत करे, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए एक प्राधिकरण की स्थापना की जाएगी जिसे भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण कहा जाएगा ।

(2) प्राधिकरण पूर्वोक्त नाम का शाश्वत उत्तराधिकार और सामान्य मुद्रा वाला निगमित निकाय होगा जिसे इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, जंगम और स्थावर दोनों ही प्रकार की संपत्ति का अर्जन, धारण और व्ययन करने की और संविदा करने की शक्ति होगी तथा वह उक्त नाम से वाद लाएगा और उस पर वाद लाया जाएगा ।

(3) प्राधिकरण एक अध्यक्ष, और कम से कम दो तथा अधिक से अधिक छह ऐसे सदस्यों से मिलकर बनेगा, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किए जाएंगे ।

(4) प्राधिकरण का प्रधान कार्यालय नई दिल्ली में होगा ।

धारा 11. प्राधिकरण के कृत्य

(1) भारतीय तार अधिनियम, 1885 में किसी बात के होते हुए भी, प्राधिकरण के कृत्य निम्नलिखित होंगे, –

(क) नए सेवा प्रदाता के समावेशन की आवश्यकता और समय की सिफारिश करना ;

(ख) सेवा प्रदाता की अनुज्ञप्ति के निबंधन और शर्तों की सिफारिश करना ;

(ग) विभिन्न सेवा प्रदाताओं के बीच तकनीकी संगतता और प्रभावी अंतःसंबंध सुनिश्चित करना ;

(घ) सेवा प्रदाताओं के बीच दूर-संचार सेवाएं उपलब्ध कराने से व्युत्पन्न उनकी आमदनी को बांटने संबंधी व्यवस्था का विनियमन करना ;

(ड) अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों का अनुपालन सुनिश्चित करना ;

(च) अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों के अननुपालन के लिए अनुज्ञप्ति के प्रतिसंहरण की सिफारिश करना ;

(छ) विभिन्न सेवा प्रदाताओं के बीच दूर-संचार के स्थानीय और लम्बी दूरी वाले सर्किट उपलब्ध कराने के लिए समयावधि अधिकथित करना और सुनिश्चित करना ;

(ज) दूर-संचार सेवाओं के प्रचालन में प्रतियोगिता को सुकर बनाना और दक्षता वृद्धि करना जिससे कि ऐसी सेवाओं की अभिवृद्धि को सुकर बनाया जा सके ;

(झ) दूर-संचार सेवा के उपभोक्ताओं के हितों का संरक्षण करना ;

(ञ) सेवा प्रदाताओं द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सेवा की क्वालिटी को मानिटर करना और ऐसी सेवा का सावधिक सर्वेक्षण करना ;

(ट) नेटवर्क में उपयोग किए गए उपस्कर का निरीक्षण करना और सेवा प्रदाताओं द्वारा उपयोग किए जाने वाले उपस्कर की किस्म की सिफारिश करना ;

(ठ) अंतःसंबंध करारों का और सभी ऐसे अन्य विषयों के ऐसे रजिस्टर रखना जो विनियमों में उपबंधित किए जाएं ;

(ड) खंड (ठ) के अधीन रखे गए रजिस्टर को ऐसी फीस के संदाय पर और ऐसी अन्य अपेक्षाओं के अनुपालन पर जो विनियमों में उपबंधित की जाएं, जनता के किसी व्यक्ति के निरीक्षण के लिए खुला रखना ;

(ढ) सेवा प्रदाताओं के मध्य विवादों का निपटारा करना ;

(ण) दूर-संचार प्रौद्योगिकी के विकास से संबंधित विषयों और साधारणतया दूर-संचार उद्योग संबंधी किसी अन्य विषय की बाबत केन्द्रीय सरकार को सलाह देना ;

(त) ऐसी सेवाओं के संबंध में फीस और अन्य प्रभार ऐसी दरों पर उद्गृहीत करना जो विनियमों द्वारा अवधारित की जाएं ;

(थ) सर्वव्यापी सेवा बाध्यताओं का प्रभावी अनुपालन सुनिश्चित करना ;

(द) ऐसे अन्य कृत्य का निर्वहन करना जिनके अन्तर्गत ऐसे प्रशासनिक और वित्तीय कृत्य भी हैं, जो उसे केन्द्रीय सरकार द्वारा सौंपे जाएं या जो इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक हों ।

(2) भारतीय तार अधिनियम, 1885 में किसी बात के होते हुए भी, प्राधिकरण समय-समय पर, आदेश द्वारा, उन दरों को राजपत्र में अधिसूचित कर सकेगा, जिन पर भारत के बाहर दूर-संचार सेवाएं इस अधिनियम के अधीन उपलब्ध कराई जाएंगी, जिनके अंतर्गत वे दरें भी हैं, जिन पर संदेशों को भारत के बाहर किसी देश को पारेषित किया जाएगा :

परन्तु प्राधिकरण एक समान दूर-संचार सेवाओं की बाबत भिन्न-भिन्न व्यक्तियों या व्यक्तियों के वर्ग के लिए भिन्न-भिन्न दरें अधिसूचित कर सकेगा और जहां पूर्वोक्त रूप में भिन्न-भिन्न दरें नियत की जाती हैं, वहां प्राधिकरण उसके लिए कारण अभिलिखित करेगा ।

(3) प्राधिकरण उपधारा (1) के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन करते समय, भारत की प्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, लोक व्यवस्था, शिष्टता या नैतिकता के विरुद्ध कृत्य नहीं करेगा ।

(4) प्राधिकरण अपनी शक्तियों का प्रयोग और कृत्यों का निर्वहन करते समय पारदर्शिता सुनिश्चित करेगा ।

12. जानकारी मांगने, अन्वेषण करने आदि की प्राधिकरण की शक्तियां – (1) जहां प्राधिकरण ऐसा करना समीचीन समझता है, वहां वह लिखित आदेश द्वारा,—

(क) किसी सेवा प्रदाता से किसी भी समय लिखित रूप में अपने कार्यकलाप से संबंधित ऐसी जानकारी या स्पष्टीकरण मांग सकेगा जो प्राधिकरण अपेक्षा करे ; या

(ख) किसी सेवा प्रदाता के कार्यकलाप से संबंधित कोई जांच करने के लिए एक या अधिक व्यक्तियों को नियुक्त कर सकेगा ; और

(ग) किसी सेवा प्रदाता की लेखा बहियों या अन्य दस्तावेजों का निरीक्षण करने के लिए अपने अधिकारियों या कर्मचारियों में से किसी को निदेश दे सकेगा ।

(2) जहां उपधारा (1) के अधीन किसी सेवा प्रदाता के कार्यकलापों के संबंध में कोई जांच की गई है वहां,—

(क) यदि ऐसा सेवा प्रदाता सरकार का कोई विभाग है तो सरकारी विभाग का प्रत्येक अधिकारी ; या

(ख) यदि ऐसा सेवा प्रदाता कोई कंपनी है तो प्रत्येक निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी ; या

(ग) यदि ऐसा सेवा प्रदाता कोई फर्म है तो प्रत्येक भागीदार, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी ; या

(घ) ऐसा प्रत्येक व्यक्ति या व्यक्तियों का निकाय जिसका खंड (ख) और खंड (ग) में उल्लिखित व्यक्तियों में से किसी के साथ कारबार अनुक्रम में संबंध रहा था,

जांच करने वाले प्राधिकरण के समक्ष अपनी अभिरक्षा या नियंत्रण में की ऐसी सभी लेखा बहियों या अन्य दस्तावेज, जो ऐसी जांच की विषयवस्तु से संबंधित है, पेश करने के लिए और प्राधिकरण को, यथास्थिति, उससे संबंधित ऐसा विवरण या जानकारी भी, जिसकी उससे अपेक्षा की जाए, ऐसे समय के भीतर जो विनिर्दिष्ट की जाए, देने के लिए आबद्ध होगा ।

(3) प्रत्येक सेवा प्रदाता ऐसी लेखा बहियां या अन्य दस्तावेज रखेगा जो विहित किए जाएं ।

(4) प्राधिकरण को सेवा प्रदाताओं को ऐसे निदेश देने की शक्ति होगी, जो वह सेवा प्रदाताओं द्वारा उचित कृत्यकरण के लिए आवश्यक समझे ।

13. निदेश देने की प्राधिकरण की शक्ति – प्राधिकरण, धारा 11 की उपधारा (1) के अधीन अपने कृत्यों के निर्वहन के लिए, सेवा

प्रदाताओं को, समय-समय पर, ऐसे निदेश दे सकेगा जो वह आवश्यक समझे ।

14. विवादों का निपटारा करने का प्राधिकार – (1) यदि सेवा प्रदाताओं के बीच या सेवा प्रदाताओं और उपभोक्ताओं के किसी समूह के बीच उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट विषयों की बाबत कोई विवाद उत्पन्न होता है तो ऐसे विवाद अध्यक्ष द्वारा गठित किसी न्यायपीठ द्वारा न्यायनिर्णीत किए जाएंगे और ऐसा न्यायपीठ दो सदस्यों से मिलकर बनेगा :

परन्तु यदि न्यायपीठ के सदस्यों में किसी प्रश्न या किन्हीं प्रश्नों पर मतभेद है तो वे ऐसे प्रश्न या प्रश्नों का, जिन पर उनका मतभेद है, कथन करेंगे और उन्हें ऐसे प्रश्न या प्रश्नों पर सुनवाई के लिए किसी तीसरे सदस्य को निर्देशित करेंगे और ऐसे प्रश्न या प्रश्नों का विनिश्चय उस सदस्य की राय के अनुसार किया जाएगा ।

(2) उपधारा (1) के अधीन गठित न्यायपीठ, नियत दिन से ही, ऐसी सभी अधिकारिता, शक्तियों और प्राधिकार का प्रयोग करेगा जो उस तारीख से ठीक पहले किसी सिविल न्यायालय द्वारा निम्नलिखित से संबंधित किसी विषय के बारे में प्रयोक्तव्य थे, अर्थात् –

(i) सेवा प्रदाताओं के बीच तकनीकी संगतता और अंतःसंबंध ;

(ii) विभिन्न सेवा प्रदाताओं के बीच आमदनी बांटने की व्यवस्था ;

(iii) दूर-संचार सेवाओं की क्वालिटी और उपभोक्ताओं का हित :

परन्तु इस उपधारा की कोई बात निम्नलिखित से संबंधित विषयों की बाबत लागू नहीं होगी –

(क) एकाधिकार व्यापारिक व्यवहार, अवरोधक व्यापारिक व्यवहार और अनुचित व्यापारिक व्यवहार, जो एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम, 1969 की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन स्थापित एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार आयोग की अधिकारिता के अधीन है ;

(ख) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 9 के अधीन स्थापित विवाद प्रतितोष पीठ या उपभोक्ता विवाद प्रतितोष आयोग या राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद प्रतितोष आयोग के समक्ष चलने योग्य किसी व्यक्ति उपभोक्ता का परिवाद ;

(ग) भारतीय तार अधिनियम, 1885 की धारा 14 की उपधारा (2) में निर्दिष्ट तार प्राधिकारी और किसी अन्य व्यक्ति के बीच विवाद ।

18. उच्च न्यायालय को अपील – प्राधिकरण के किसी विनिश्चय या आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति प्राधिकरण के विनिश्चय या आदेश से उसे संसूचित किए जाने की तारीख से तीस दिन के भीतर उच्च न्यायालय को अपील फाइल कर सकेगा :

परन्तु यदि उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि अपीलकर्ता उक्त अवधि के भीतर अपील फाइल करने से पर्याप्त कारणों से निवारित हो गया था तो वह उसे साठ दिन से अनधिक और अवधि के भीतर फाइल करने के लिए अनुज्ञात कर सकेगा ।

33. प्रत्यायोजन – प्राधिकरण, साधारण या विशेष लिखित आदेश द्वारा, प्राधिकरण के किसी सदस्य, अधिकारी या किसी अन्य व्यक्ति को, ऐसी शर्तों के, यदि कोई हों, अधीन रहते हुए, जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जाएं, इस अधिनियम के अधीन अपनी ऐसी शक्तियों और कृत्यों का (अध्याय 4 के अधीन विवाद का निपटारा करने और धारा 36 के अधीन विनियम बनाने की शक्ति को छोड़कर) जो वह आवश्यक समझे, प्रत्यायोजित कर सकेगा ।

35. नियम बनाने की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् –

(क) धारा 5 की उपधारा (5) के अधीन अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा की अन्य शर्तें ;

(ख) धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन अध्यक्ष की शक्तियां और कृत्य ;

(ग) धारा 7 की उपधारा (2) के अधीन जांच करने की प्रक्रिया ;

(घ) ऐसी लेखा बहियों या अन्य दस्तावेजों का प्रवर्ग जिनका धारा 12 की उपधारा (3) के अधीन रखा जाना अपेक्षित है ;

(ङ) वह अवधि जिसके भीतर धारा 15 की उपधारा (1) के अधीन कोई आवेदन किया जाएगा ;

(च) वह रीति जिससे धारा 23 की उपधारा (1) के अधीन प्राधिकरण के लेखे रखे जाएंगे ;

(छ) वह समय जिसके भीतर और वह प्ररूप जिसमें तथा वह रीति जिससे धारा 24 की उपधारा (1) और उपधारा (2) के अधीन केन्द्रीय सरकार की विवरणियां और रिपोर्ट दी जाएंगी ;

(ज) कोई अन्य विषय, जिसे विहित किया जाना है या जो विहित किया जाए अथवा जिसकी बाबत नियमों द्वारा उपबंध किया जाना है ।

36. विनियम बनाने की शक्ति – (1) प्राधिकरण, अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए, ऐसे विनियम बना सकेगा जो इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों से संगत हों ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे विनियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् –

(क) धारा 8 की उपधारा (1) के अधीन प्राधिकरण के अधिवेशनों का समय तथा स्थान और ऐसे अधिवेशनों में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया, जिसके अन्तर्गत कार्य करने की आवश्यक गणपूर्ति भी है ;

(ख) धारा 8 की उपधारा (4) के अधीन प्राधिकरण के अधिवेशनों में कार्य करना ;

(ग) धारा 10 की उपधारा (2) के अधीन प्राधिकरण के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते तथा सेवा की अन्य शर्तें ;

(घ) वे विषय जिनकी बाबत धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (ठ) के अधीन प्राधिकरण द्वारा रजिस्टर रखा जाएगा ;

(ङ) फीस का उद्ग्रहण और ऐसी अन्य अपेक्षाएं अधिकथित करना जिनके पूरा करने पर धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (ड) के अधीन रजिस्टर की प्रति प्राप्त की जा सकेगी ;

(च) धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (त) के अधीन फीस और अन्य प्रभारों का उद्ग्रहण ।

37. नियमों और विनियमों का संसद् के समक्ष रखा जाना –

इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम और प्रत्येक विनियम बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम या विनियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान से पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम या विनियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो वह तत्पश्चात् निष्प्रभावी हो जाएगा । किन्तु नियम या विनियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।”

20. अधिनियम के कार्यान्वयन में अनुभव की गई कठिनाइयों को दूर करने की दृष्टि से, केन्द्रीय सरकार ने वित्त मंत्री की अध्यक्षता में दूर-संचार और सूचना प्रौद्योगिकी समवाय पर समूह का गठन किया । समूह द्वारा की गई सिफारिशों के आधार पर भारत दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण (संशोधन) अध्यादेश, 2000 जारी किया गया, जिसे भारत दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण (संशोधन) अधिनियम, 2000 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया । संशोधन अधिनियम की एक महत्वपूर्ण विशेषता अनुज्ञापक और

अनुज्ञप्तिधारी के बीच, दो या दो से अधिक सेवा प्रदाताओं के बीच, सेवा प्रदाता और उपभोक्ता समूह के बीच विवादों का न्यायनिर्णयन करने तथा प्राधिकरण के निदेश, विनिश्चय या आदेश से उद्भूत किसी अपील की सुनवाई और निपटारा करने के लिए दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण की स्थापना करना थी ।

21. संशोधित अधिनियम के उपबंध, जिनका इस निर्णय के प्रारंभिक पैरा में विरचित किए गए प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए सरोकार है, निम्नलिखित हैं :-

“2. परिभाषाएं – (1) * ****

(कक) ‘अपील प्राधिकरण’ से धारा 14 के अधीन स्थापित दूर-संचार विवाद समाधान और अपील प्राधिकरण अभिप्रेत है ;

(ख) ‘प्राधिकरण’ से धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन स्थापित भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अभिप्रेत है ;

(ड) ‘अनुज्ञप्तिधारी’ से ऐसा कोई व्यक्ति अभिप्रेत है जिसे विनिर्दिष्ट सार्वजनिक दूर-संचार सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए भारतीय तार अधिनियम, 1885 (1885 का 13) की धारा 4 की उपधारा (1) के अधीन कोई अनुज्ञप्ति प्राप्त है ;

(डक) ‘अनुज्ञापक’ से केन्द्रीय सरकार या तार प्राधिकरण अभिप्रेत है जो भारतीय तार अधिनियम, 1885 की धारा 4 के अधीन कोई अनुज्ञप्ति प्रदान करता है ;

(झ) ‘विनियम’ से इस अधिनियम के अधीन प्राधिकरण द्वारा बनाए गए विनियम अभिप्रेत हैं ;

(ञ) ‘सेवा प्रदाता’ से सेवा प्रदाता के रूप में सरकार अभिप्रेत है और उसके अन्तर्गत अनुज्ञप्तिधारी भी है ;

(ट) ‘दूर-संचार सेवा’ से किसी भांति की ऐसी सेवा (जिसके अन्तर्गत इलैक्ट्रॉनिक डाक, वाक डाक, आंकड़े सेवाएं, श्रव्य टैक्स सेवाएं, वीडियो टैक्स सेवाएं, रेडियो पेजिंग और सेलुलर चल टेलीफोन सेवाएं हैं) अभिप्रेत है जो उपभोक्ताओं को चिह्नों, प्रतीकों, लेखन, बिंबों और ध्वनियों के किसी पारेषण या अभिग्रहण अथवा तार, रेडियो, दृश्य या अन्य वैद्युत चुम्बकीय साधनों द्वारा किसी प्रकार की

आसूचना के माध्यम से उपलब्ध कराई जाती है किन्तु इसके अन्तर्गत प्रसारण सेवाएं नहीं हैं :

परन्तु केन्द्रीय सरकार अन्य सेवा को जिसके अन्तर्गत प्रसारण सेवाएं भी हैं, दूर-संचार सेवा होना अधिसूचित कर सकती है ।

11. प्राधिकरण के कृत्य – भारतीय तार अधिनियम, 1885 (1885 का 13) में किसी बात के होते हुए भी, प्राधिकरण के कृत्य निम्नलिखित होंगे, –

(क) निम्नलिखित विषयों के संबंध में स्वप्ररेणा से या अनुज्ञापक के अनुरोध पर सिफारिशें करना, अर्थात् –

(i) नए सेवा प्रदाता के प्रवेश की आवश्यकता और उसका समय निर्धारण ;

(ii) सेवा प्रदाता की अनुज्ञप्ति के निबंधन और शर्तें ;

(iii) अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों के अननुपालन के लिए अनुज्ञप्ति का प्रतिसंहरण ;

(iv) दूर-संचार सेवाओं के प्रचालन में प्रतियोगिता को सुकर बनाने और दक्षता वृद्धि के लिए उपाय करना जिससे कि ऐसी सेवाओं की अभिवृद्धि को सुकर बनाया जा सके ;

(v) सेवा प्रदाताओं द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सेवाओं में प्रौद्योगिकी सुधार ;

(vi) नेटवर्क में उपयोग किए गए उपस्कर के निरीक्षण के पश्चात् सेवा प्रदाताओं द्वारा उपयोग किए जाने वाले उपस्कर की किस्म ;

(vii) दूर-संचार प्रौद्योगिकी के विकास के लिए और दूर-संचार उद्योग के संबंध में साधारणतया अन्य विषय के लिए उपाय ;

(viii) उपलब्ध परिदृश्य का दक्षतापूर्ण प्रबंधन ;

(ख) निम्नलिखित कृत्यों का निर्वहन करना, अर्थात् –

(i) अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों का अनुपालन सुनिश्चित करना ;

(ii) दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण (संशोधन) अधिनियम, 2000 के प्रारंभ से पूर्व प्रदान की गई अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों में किसी बात के होते हुए भी सेवा प्रदाताओं के बीच अंतःसम्बद्धता के निबंधन और शर्तें नियत करना ;

(iii) विभिन्न सेवा प्रदाताओं के बीच तकनीकी संगतता और प्रभावी अंतःसंबंध सुनिश्चित करना ;

(iv) सेवा प्रदाताओं के बीच दूर-संचार सेवाएं उपलब्ध कराने से व्युत्पन्न उनकी आमदनी को बांटने संबंधी व्यवस्था का विनियमन करना ;

(v) सेवा प्रदाताओं द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सेवा की क्वालिटी के मानक अधिकथित करना और सेवा की क्वालिटी सुनिश्चित करना तथा सेवा प्रदाताओं द्वारा उपलब्ध कराई गई ऐसी सेवा का आवधिक सर्वेक्षण करना जिससे कि दूर-संचार सेवा के उपभोक्ताओं के हितों को संरक्षित किया जा सके ;

(vi) विभिन्न सेवा प्रदाताओं के बीच दूर-संचार के स्थानीय और लम्बी दूरी वाले सर्किट उपलब्ध कराने के लिए समयावधि अधिकथित करना और सुनिश्चित करना ;

(vii) अंतःसंबंध करारों का और सभी ऐसे अन्य विषयों के ऐसे रजिस्टर रखना जो विनियमों में उपबंधित किए जाएं ;

(viii) खंड (vii) के अधीन रखे गए रजिस्टर को ऐसी फीस के संदाय पर और ऐसी अन्य अपेक्षाओं के अनुपालन पर जो विनियमों में उपबंधित की जाएं, जनता के किसी व्यक्ति के निरीक्षण के लिए खुला रखना ;

(ix) सर्वव्यापी सेवा बाध्यताओं का प्रभावी अनुपालन सुनिश्चित करना ;

(ग) ऐसी सेवाओं के संबंध में फीस और अन्य प्रभार ऐसी दरों पर उद्गृहीत करना जो विनियमों द्वारा अवधारित की जाएं ;

(घ) ऐसे अन्य कृत्य का निर्वहन करना जिनके अन्तर्गत ऐसे प्रशासनिक और वित्तीय कृत्य भी हैं, जो उसे केन्द्रीय सरकार द्वारा सौंपे जाएं या जो इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक हों :

परन्तु इस उपधारा के खंड (क) में विनिर्दिष्ट प्राधिकरण की सिफारिशें केन्द्रीय सरकार पर आबद्धकर नहीं होंगी :

परन्तु यह और कि केन्द्रीय सरकार किसी सेवा प्रदाता को जारी की जाने वाली नई अनुज्ञप्ति की बाबत इस उपधारा के खंड (क) के उपखंड (i) और उपखंड (ii) में विनिर्दिष्ट विषयों की बाबत प्राधिकरण से सिफारिशों की ईप्सा करेगी और प्राधिकरण अपनी सिफारिशें उस तारीख से, जिसको केन्द्रीय सरकार सिफारिशों की ईप्सा करती है, 60 दिन की अवधि के भीतर अग्रेषित करेगा :

परन्तु यह भी कि प्राधिकरण केन्द्रीय सरकार से ऐसी जानकारी या दस्तावेज, जो इस उपधारा के खंड (क) के उपखंड (i) और उपखंड (ii) के अधीन सिफारिश किए जाने के प्रयोजन के लिए आवश्यक हों, प्रस्तुत करने के लिए अनुरोध कर सकेगा और केन्द्रीय सरकार ऐसे अनुरोध की प्राप्ति से सात दिन की अवधि के भीतर ऐसी जानकारी का प्रदाय करेगी :

परन्तु यह भी कि यदि दूसरे परन्तुक में विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर या ऐसी अवधि के भीतर जो केन्द्रीय सरकार और प्राधिकरण के बीच आपस में करार पाई जाए, प्राधिकरण से कोई सिफारिश प्राप्त नहीं होती है तो केन्द्रीय सरकार किसी सेवा प्रदाता को अनुज्ञप्ति जारी कर सकेगी :

परन्तु यह भी कि यदि केन्द्रीय सरकार प्राधिकरण की उस सिफारिश पर विचार करने पर प्रथमदृष्ट्या इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि ऐसी सिफारिश स्वीकार नहीं की जा सकती या उसमें उपांतरण आवश्यक है, तो वह सिफारिश को प्राधिकरण को वापस पुनर्विचार के लिए निर्दिष्ट कर सकेगी और प्राधिकरण ऐसे निर्देश की प्राप्ति से पन्द्रह दिन की अवधि के भीतर सरकार द्वारा किए गए निर्देश पर विचार करने के पश्चात् अपनी सिफारिश केन्द्रीय सरकार को अग्रेषित कर सकेगा और सिफारिश के, यदि कोई हो, प्राप्त होने के पश्चात् केन्द्रीय सरकार अंतिम विनिश्चय करेगी ।

(2) भारतीय तार अधिनियम, 1885 (1885 का 13) में किसी बात के होते हुए भी, प्राधिकरण समय-समय पर, आदेश द्वारा, उन दरों को राजपत्र में अधिसूचित कर सकेगा, जिन पर भारत के बाहर दूर-संचार सेवाएं इस अधिनियम के अधीन उपलब्ध कराई जाएंगी,

जिनके अंतर्गत वे दरें भी हैं, जिन पर संदेशों को भारत के बाहर किसी देश को पारेषित किया जाएगा :

परन्तु प्राधिकरण एक समान दूर-संचार सेवाओं की बाबत भिन्न-भिन्न व्यक्तियों या व्यक्तियों के वर्ग के लिए भिन्न-भिन्न दरें अधिसूचित कर सकेगा और जहां पूर्वोक्त रूप में भिन्न-भिन्न दरें नियत की जाती हैं, वहां प्राधिकरण उसके लिए कारण अभिलिखित करेगा ।

(3) प्राधिकरण उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन करते समय, भारत की प्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, लोक व्यवस्था, शिष्टता या नैतिकता के विरुद्ध कृत्य नहीं करेगा ।

(4) प्राधिकरण अपनी शक्तियों का प्रयोग और कृत्यों का निर्वहन करते समय पारदर्शिता सुनिश्चित करेगा ।

12. जानकारी मांगने, अन्वेषण करने आदि की प्राधिकरण की शक्तियां – (1) जहां प्राधिकरण ऐसा करना समीचीन समझता है, वहां वह लिखित आदेश द्वारा,—

(क) किसी सेवा प्रदाता से किसी भी समय लिखित रूप में अपने कार्यकलाप से संबंधित ऐसी जानकारी या स्पष्टीकरण मांग सकेगा जो प्राधिकरण अपेक्षा करे ; या

(ख) किसी सेवा प्रदाता के कार्यकलाप से संबंधित कोई जांच करने के लिए एक या अधिक व्यक्तियों को नियुक्त कर सकेगा ; और

(ग) किसी सेवा प्रदाता की लेखा बहियों या अन्य दस्तावेजों का निरीक्षण करने के लिए अपने अधिकारियों या कर्मचारियों में से किसी को निदेश दे सकेगा ।

(2) जहां उपधारा (1) के अधीन किसी सेवा प्रदाता के कार्यकलापों के संबंध में कोई जांच की गई है वहां,—

(क) यदि ऐसा सेवा प्रदाता सरकार का कोई विभाग है तो सरकारी विभाग का प्रत्येक अधिकारी ; या

(ख) यदि ऐसा सेवा प्रदाता कोई कंपनी है तो प्रत्येक निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी ; या

(ग) यदि ऐसा सेवा प्रदाता कोई फर्म है तो प्रत्येक भागीदार, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी ; या

(घ) ऐसा प्रत्येक व्यक्ति या व्यक्तियों का निकाय जिसका खंड (ख) और खंड (ग) में उल्लिखित व्यक्तियों में से किसी के साथ कारबार अनुक्रम में संबंध रहा था,

जांच करने वाले प्राधिकरण के समक्ष अपनी अभिरक्षा या नियंत्रण में की ऐसी सभी लेखा बहियों या अन्य दस्तावेज, जो ऐसी जांच की विषयवस्तु से संबंधित है, पेश करने के लिए और प्राधिकरण को, यथास्थिति, उससे संबंधित ऐसा विवरण या जानकारी भी, जिसकी उससे अपेक्षा की जाए, ऐसे समय के भीतर जो विनिर्दिष्ट की जाए, देने के लिए आबद्ध होगा ।

(3) प्रत्येक सेवा प्रदाता ऐसी लेखा बहियां या अन्य दस्तावेज रखेगा जो विहित किए जाएं ।

(4) प्राधिकरण को सेवा प्रदाताओं को ऐसे निदेश देने की शक्ति होगी, जो वह सेवा प्रदाताओं द्वारा उचित कृत्यकरण के लिए आवश्यक समझे ।

13. निदेश देने की प्राधिकरण की शक्ति – प्राधिकरण, धारा 11 की उपधारा (1) के अधीन अपने कृत्यों के निर्वहन के लिए, सेवा प्रदाताओं को, समय-समय पर, ऐसे निदेश दे सकेगा जो वह आवश्यक समझे :

परन्तु धारा 12 की उपधारा (4) के अधीन या इस धारा के अधीन कोई निदेश, धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (ख) में विनिर्दिष्ट विषयों के सिवाय जारी नहीं किया जाएगा ।

14. अपील अधिकरण की स्थापना – केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा,—

(क) (i) अनुज्ञापक या किसी अनुज्ञप्तिधारी के बीच ;

(ii) दो या अधिक सेवा प्रदाताओं के बीच ;

(iii) सेवा प्रदाता और उपभोक्ताओं के समूह के बीच ;

किसी विवाद को न्यायनिर्णीत करने के लिए, दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण नामक अपील अधिकरण की स्थापना कर सकेगी :

परन्तु इस खंड की कोई बात निम्नलिखित से संबंधित विषयों की बाबत लागू नहीं होगी –

(अ) एकाधिकार व्यापारिक व्यवहार, अवरोधक व्यापारिक व्यवहार और अनुचित व्यापारिक व्यवहार, जो एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम, 1969 (1969 का 54) की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन स्थापित एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार आयोग की अधिकारिता के अधीन है ;

(आ) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 (1986 का 68) की धारा 9 के अधीन स्थापित विवाद प्रतितोष पीठ या उपभोक्ता विवाद प्रतितोष आयोग या राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद प्रतितोष आयोग के समक्ष चलने योग्य किसी व्यष्टिक उपभोक्ता का परिवाद ;

(इ) भारतीय तार अधिनियम, 1885 (1885 का 13) की धारा 14 की उपधारा (2) में निर्दिष्ट तार प्राधिकारी और किसी अन्य व्यक्ति के बीच विवाद ;

(ख) इस अधिनियम के अधीन प्राधिकरण के किसी निदेश, विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध अपील की सुनवाई और उसका निपटारा करना ।

14क. विवाद के निपटारे के लिए आवेदन और अपील अधिकरण को अपील – (7) अपील अधिकरण उपधारा (1) के अधीन किए गए किसी आवेदन में किसी विवाद या उपधारा (2) के अधीन प्राधिकरण के किसी निदेश या आदेश या विनिश्चय के विरुद्ध की गई अपील की वैधता या सत्यता का परीक्षण करने के प्रयोजन के लिए स्वप्ररेणा से या अन्यथा ऐसे आवेदन या अपील के निपटारे से सुसंगत अभिलेखों को मंगाएगा और उसे आदेश करेगा, जो वह ठीक समझे ।

14ड. लंबित मामलों का अंतरण – इस अधिनियम के अधीन अपील अधिकरण की स्थापना से ठीक पहले अधिकरण के समक्ष विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए लंबित सभी आवेदन उस तारीख को ऐसे अधिकरण को अंतरित हो जाएंगे :

परन्तु अध्याय 4 के उपबंधों के अधीन न्यायनिर्णीत किए जाने वाले सभी विवाद जो दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण (संशोधन)

अधिनियम, 2000 के ठीक पूर्व विद्यमान थे तब तक अधिकरण द्वारा उस अध्याय में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार न्यायनिर्णीत किए जाते रहेंगे जब तक कि इस अधिनियम के अधीन अपील अधिकरण की स्थापना नहीं हो जाती :

परन्तु यह और कि प्रथम परन्तुक में निर्दिष्ट सभी मामले प्राधिकरण द्वारा अपील अधिकरण को धारा 14 के अधीन उसके स्थापित किए जाने पर अंतरित हो जाएंगे ।

14द. अपीलों का अन्तरण – (1) दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण (संशोधन) अधिनियम, 2000 के प्रारंभ से ठीक पूर्व उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित सभी अपीलों, अधिकरण को धारा 14 के अधीन उसकी स्थापना पर अन्तरित हो जाएंगी ।

(2) जहां उच्च न्यायालय से उपधारा (1) के अधीन कोई अपील अन्तरित की जाती है, वहां,—

(क) उच्च न्यायालय, ऐसे अन्तरण के पश्चात् यथाशीघ्र ऐसी अपील के अभिलेख अपील अधिकरण को अग्रेषित करेगा ; और

(ख) अपील अधिकरण, ऐसे अभिलेखों के प्राप्त होने पर, ऐसी अपीलों का उस प्रक्रम से, जिस पर वह ऐसे अन्तरण से पूर्व थे या किसी अन्य पूर्वतर प्रक्रम से या नए सिरे से, जो भी अपील अधिकरण ठीक समझे, कार्रवाई करेगा ।

18. उच्चतम न्यायालय को अपील – (1) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या किसी अन्य विधि में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, अपील अधिकरण के किसी आदेश के विरुद्ध, जो अंतर्वर्ती आदेश नहीं है, उस संहिता की धारा 100 में विनिर्दिष्ट किसी एक या अधिक आधारों पर उच्चतम न्यायालय को अपील होगी ।

(2) अपील अधिकरण द्वारा पक्षकारों की सहमति से किए गए किसी विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध कोई अपील नहीं होगी ।

(3) इस धारा के अधीन प्रत्येक अपील, उस विनिश्चय या आदेश की तारीख से जिसके विरुद्ध अपील की गई है, नब्बे दिन की अवधि के भीतर की जाएगी :

परन्तु उच्चतम न्यायालय, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि अपीलार्थी समय से अपील करने में पर्याप्त हेतुक से निवारित हो गया था तो नब्बे दिन की उक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात् अपील ग्रहण कर सकेगा ।

33. प्रत्यायोजन – प्राधिकरण, साधारण या विशेष लिखित आदेश द्वारा, प्राधिकरण के किसी सदस्य, अधिकारी या किसी अन्य व्यक्ति को, ऐसी शर्तों के, यदि कोई हों, अधीन रहते हुए, जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जाएं, इस अधिनियम के अधीन अपनी ऐसी शक्तियों और कृत्यों का (अध्याय 4 के अधीन विवाद का निपटारा करने और धारा 36 के अधीन विनियम बनाने की शक्ति को छोड़कर) जो वह आवश्यक समझे, प्रत्यायोजित कर सकेगा ।

35. नियम बनाने की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् –

(क) धारा 5 की उपधारा (5) के अधीन अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा की अन्य शर्तें ;

(कक) धारा 5 की उपधारा (6क) के अधीन अंशकालिक सदस्यों को संदेय भत्ते ;

(ख) धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन अध्यक्ष की शक्तियां और कृत्य ;

(ग) धारा 7 की उपधारा (2) के अधीन जांच करने की प्रक्रिया ;

(गक) धारा 10 की उपधारा (2) के अधीन प्राधिकरण के अधिकारियों और कर्मचारियों के वेतन और भत्ते तथा सेवा की अन्य शर्तें ;

(घ) ऐसी लेखा बहियों या अन्य दस्तावेजों का प्रवर्ग जिनका धारा 12 की उपधारा (3) के अधीन रखा जाना अपेक्षित है ;

(घक) धारा 14 की उपधारा (3) के अधीन प्ररूप, उसके सत्यापन की रीति और फीस ;

(घख) धारा 14R के अधीन अपील अधिकरण के अध्यक्ष और अन्य सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते और सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें ;

(घग) धारा 14ज की उपधारा (3) के अधीन अपील अधिकरण के अधिकारियों और कर्मचारियों के वेतन और भत्ते तथा सेवा की अन्य शर्तें ;

(घघ) धारा 16 की उपधारा (2) के खंड (झ) के अधीन विहित की जाने के लिए अपेक्षित सिविल न्यायालय की कोई अन्य शक्ति ;

(R) वह अवधि जिसके भीतर धारा 15 की उपधारा (1) के अधीन कोई आवेदन किया जाएगा ;

(च) वह रीति जिससे धारा 23 की उपधारा (1) के अधीन प्राधिकरण के लेखे रखे जाएंगे ;

(छ) वह समय जिसके भीतर और वह प्ररूप जिसमें तथा वह रीति जिससे धारा 24 की उपधारा (1) और उपधारा (2) के अधीन केन्द्रीय सरकार की विवरणियां और रिपोर्ट दी जाएंगी ;

(ज) कोई अन्य विषय, जिसे विहित किया जाना है या जो विहित किया जाए अथवा जिसकी बाबत नियमों द्वारा उपबंध किया जाना है ।

36. विनियम बनाने की शक्ति – (1) प्राधिकरण, अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए, ऐसे विनियम बना सकेगा जो इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों से संगत हों ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे विनियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् –

(क) धारा 8 की उपधारा (1) के अधीन प्राधिकरण के अधिवेशनों का समय तथा स्थान और ऐसे अधिवेशनों में

अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया, जिसके अन्तर्गत कार्य करने की आवश्यक गणपूर्ति भी है ;

(ख) धारा 8 की उपधारा (4) के अधीन प्राधिकरण के अधिवेशनों में कार्य करना ;

(ग) 2000 के अधिनियम सं. 2 द्वारा लोप किया गया ;

(घ) वे विषय जिनकी बाबत धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (ठ) के अधीन प्राधिकरण द्वारा रजिस्टर रखा जाएगा ;

(R) फीस का उद्ग्रहण और ऐसी अन्य अपेक्षाएं अधिकथित करना जिनके पूरा करने पर धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (ख) के उपखंड (viii) के अधीन रजिस्टर की प्रति प्राप्त की जा सकेगी ;

(च) धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (ग) के अधीन फीस और अन्य प्रभारों का उद्ग्रहण ।

37. नियमों और विनियमों का संसद् के समक्ष रखा जाना –

इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम और प्रत्येक विनियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम या विनियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान से पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम या विनियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो वह तत्पश्चात् निष्प्रभावी हो जाएगा । किन्तु नियम या विनियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।”

22. असंशोधित और संशोधित अधिनियमों के सुसंगत उपबंधों का तुलनात्मक विवरण नीचे दिया जाता है :-

असंशोधित अधिनियम	संशोधित अधिनियम
<p>प्रस्तावना</p> <p>दूर-संचार सेवाओं को विनियमित करने के लिए भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण की स्थापना का और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम ।</p> <p>धारा 3.</p> <p>प्राधिकरण की स्थापना और निगमन –</p> <p>(1) ऐसी तारीख से जो केन्द्रीय सरकार, अधिसूचना द्वारा, नियत करे, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए एक प्राधिकरण की स्थापना की जाएगी जिसे भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण कहा जाएगा ।</p> <p>(2) प्राधिकरण पूर्वोक्त नाम का शाश्वत उत्तराधिकार और सामान्य मुद्रा वाला निगमित निकाय होगा जिसे इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, जंगम और स्थावर दोनों ही प्रकार की संपत्ति का अर्जन, धारण और व्ययन करने की और संविदा करने की शक्ति होगी तथा वह उक्त नाम से वाद लाएगा और उस पर वाद लाया जाएगा ।</p> <p>(3) प्राधिकरण एक अध्यक्ष, और कम से कम दो तथा अधिक से अधिक छह ऐसे सदस्यों से मिलकर बनेगा, जो केन्द्रीय</p>	<p>प्रस्तावना</p> <p>दूर-संचार सेवाओं को विनियमित करने, विवादों को न्यायनिर्णीत करने, अपीलों को निपटाने और दूर-संचार सेक्टर के प्रदाताओं और उपभोक्ताओं के हितों का संरक्षण करने, दूर-संचार सेक्टर के सुव्यवस्थित विकास को संप्रवर्तित और सुनिश्चित करने के लिए भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण और दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण की स्थापना का और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम ।</p> <p>धारा 3.</p> <p>प्राधिकरण की स्थापना और निगमन –</p> <p>(1) ऐसी तारीख से जो केन्द्रीय सरकार, अधिसूचना द्वारा, नियत करे, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए एक प्राधिकरण की स्थापना की जाएगी जिसे भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण कहा जाएगा ।</p> <p>(2) प्राधिकरण पूर्वोक्त नाम का शाश्वत उत्तराधिकार और सामान्य मुद्रा वाला निगमित निकाय होगा जिसे इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, जंगम और स्थावर दोनों ही प्रकार की संपत्ति का अर्जन, धारण और व्ययन करने की और संविदा करने की शक्ति होगी तथा वह उक्त नाम से वाद लाएगा और उस पर वाद लाया जाएगा ।</p> <p>(3) प्राधिकरण एक अध्यक्ष, और दो से अनधिक पूर्णकालिक सदस्यों और दो से अनधिक अंशकालिक सदस्यों से मिलकर बनेगा, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त</p>

<p>सरकार द्वारा नियुक्त किए जाएंगे ।</p> <p>(4) प्राधिकरण का प्रधान कार्यालय नई दिल्ली में होगा ।</p> <p>धारा 11.</p> <p>प्राधिकरण के कृत्य – (1) भारतीय तार अधिनियम, 1885 में किसी बात के होते हुए भी, प्राधिकरण के कृत्य निम्नलिखित होंगे, –</p> <p>(क) नए सेवा प्रदाता के समावेशन की आवश्यकता और समय की सिफारिश करना ;</p> <p>(ख) सेवा प्रदाता की अनुज्ञप्ति के निबंधन और शर्तों की सिफारिश करना ;</p> <p>(ग) विभिन्न सेवा प्रदाताओं के बीच तकनीकी संगतता और प्रभावी अंतःसंबंध सुनिश्चित करना ;</p> <p>(घ) सेवा प्रदाताओं के बीच दूर-संचार सेवाएं उपलब्ध कराने से व्युत्पन्न उनकी आमदनी को बांटने संबंधी व्यवस्था का विनियमन करना ;</p> <p>(R) अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों का अनुपालन सुनिश्चित करना ;</p> <p>(च) अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों के अननुपालन के लिए अनुज्ञप्ति के प्रतिसंहरण की सिफारिश करना ;</p> <p>(छ) विभिन्न सेवा प्रदाताओं के बीच दूर-संचार के स्थानीय और लम्बी दूरी वाले सर्किट उपलब्ध कराने के लिए समयावधि अधिकथित करना और सुनिश्चित करना ;</p> <p>(ज) दूर-संचार सेवाओं के प्रचालन में प्रतियोगिता को सुकर बनाना और दक्षता</p>	<p>किए जाएंगे ।</p> <p>(4) प्राधिकरण का प्रधान कार्यालय नई दिल्ली में होगा ।</p> <p>धारा 11.</p> <p>प्राधिकरण के कृत्य – भारतीय तार अधिनियम, 1885 (1885 का 13) में किसी बात के होते हुए भी, प्राधिकरण के कृत्य निम्नलिखित होंगे, –</p> <p>(क) निम्नलिखित विषयों के संबंध में स्वप्ररेणा से या अनुज्ञापक के अनुरोध पर सिफारिशें करना, अर्थात् –</p> <p>(i) नए सेवा प्रदाता के प्रवेश की आवश्यकता और उसका समय निर्धारण ;</p> <p>(ii) सेवा प्रदाता की अनुज्ञप्ति के निबंधन और शर्तों ;</p> <p>(iii) अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों के अननुपालन के लिए अनुज्ञप्ति का प्रतिसंहरण ;</p> <p>(iv) दूर-संचार सेवाओं के प्रचालन में प्रतियोगिता को सुकर बनाने और दक्षता वृद्धि के लिए उपाय करना जिससे कि ऐसी सेवाओं की अभिवृद्धि को सुकर बनाया जा सके ;</p> <p>(v) सेवा प्रदाताओं द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सेवाओं में प्रौद्योगिकी सुधार ;</p> <p>(vi) नेटवर्क में उपयोग किए गए उपस्कर के निरीक्षण के पश्चात् सेवा प्रदाताओं द्वारा उपयोग किए जाने वाले उपस्कर की किस्म ;</p> <p>(vii) दूर-संचार प्रौद्योगिकी के विकास के लिए और दूर-संचार</p>
--	--

<p>वृद्धि करना जिससे कि ऐसी सेवाओं की अभिवृद्धि को सुकर बनाया जा सके ;</p> <p>(झ) दूर-संचार सेवा के उपभोक्ताओं के हितों का संरक्षण करना ;</p> <p>(ञ) सेवा प्रदाताओं द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सेवा की क्वालिटी को मानिटर करना और ऐसी सेवा का सावधिक सर्वेक्षण करना ;</p> <p>(ट) नेटवर्क में उपयोग किए गए उपस्कर का निरीक्षण करना और सेवा प्रदाताओं द्वारा उपयोग किए जाने वाले उपस्कर की किस्म की सिफारिश करना ;</p> <p>(ठ) अंतःसंबंध करारों का और सभी ऐसे अन्य विषयों के ऐसे रजिस्टर रखना जो विनियमों में उपबंधित किए जाएं ;</p> <p>(ड) खंड (ठ) के अधीन रखे गए रजिस्टर को ऐसी फीस के संदाय पर और ऐसी अन्य अपेक्षाओं के अनुपालन पर जो विनियमों में उपबंधित की जाएं, जनता के किसी व्यक्ति के निरीक्षण के लिए खुला रखना ;</p> <p>(ढ) सेवा प्रदाताओं के मध्य विवादों का निपटारा करना ;</p> <p>(ण) दूर-संचार प्रौद्योगिकी के विकास से संबंधित विषयों और साधारणतया दूर-संचार उद्योग संबंधी किसी अन्य विषय की बाबत केन्द्रीय सरकार को सलाह देना ;</p> <p>(त) ऐसी सेवाओं के संबंध में फीस और अन्य प्रभार ऐसी दरों पर उद्गृहीत करना जो विनियमों द्वारा अवधारित की जाएं ;</p> <p>(थ) सर्वव्यापी सेवा बाध्यताओं का प्रभावी अनुपालन सुनिश्चित करना ;</p> <p>(द) ऐसे अन्य कृत्य का निर्वहन करना जिनके अन्तर्गत ऐसे प्रशासनिक और वित्तीय कृत्य भी हैं, जो उसे केन्द्रीय</p>	<p>उद्योग के संबंध में साधारणतया अन्य विषय के लिए उपाय ;</p> <p>(viii) उपलब्ध परिदृश्य का दक्षतापूर्ण प्रबंधन ;</p> <p>(ख) निम्नलिखित कृत्यों का निर्वहन करना, अर्थात् –</p> <p>(i) अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों का अनुपालन सुनिश्चित करना ;</p> <p>(ii) दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण (संशोधन) अधिनियम, 2000 के प्रारंभ से पूर्व प्रदान की गई अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों में किसी बात के होते हुए भी सेवा प्रदाताओं के बीच अंतःसम्बद्धता के निबंधन और शर्तें नियत करना ;</p> <p>(iii) विभिन्न सेवा प्रदाताओं के बीच तकनीकी संगतता और प्रभावी अंतःसंबंध सुनिश्चित करना ;</p> <p>(iv) सेवा प्रदाताओं के बीच दूर-संचार सेवाएं उपलब्ध कराने से व्युत्पन्न उनकी आमदनी को बांटने संबंधी व्यवस्था का विनियमन करना ;</p> <p>(v) सेवा प्रदाताओं द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सेवा की क्वालिटी के मानक अधिकथित करना और सेवा की क्वालिटी सुनिश्चित करना तथा सेवा प्रदाताओं द्वारा उपलब्ध कराई गई ऐसी सेवा का आवधिक सर्वेक्षण करना जिससे कि दूर-संचार सेवा के उपभोक्ताओं के हितों को संरक्षित किया जा सके ;</p> <p>(vi) विभिन्न सेवा प्रदाताओं के बीच दूर-संचार के स्थानीय और लम्बी दूरी वाले सर्किट उपलब्ध</p>
--	---

<p>सरकार द्वारा सौंपे जाएं या जो इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक हों ।</p> <p>(2) भारतीय तार अधिनियम, 1885 में किसी बात के होते हुए भी, प्राधिकरण समय-समय पर, आदेश द्वारा, उन दरों को राजपत्र में अधिसूचित कर सकेगा, जिन पर भारत के बाहर दूर-संचार सेवाएं इस अधिनियम के अधीन उपलब्ध कराई जाएंगी, जिनके अंतर्गत वे दरें भी हैं, जिन पर संदेशों को भारत के बाहर किसी देश को पारेषित किया जाएगा :</p> <p>परन्तु प्राधिकरण एक समान दूर-संचार सेवाओं की बाबत भिन्न-भिन्न व्यक्तियों या व्यक्तियों के वर्ग के लिए भिन्न-भिन्न दरें अधिसूचित कर सकेगा और जहां पूर्वोक्त रूप में भिन्न-भिन्न दरें नियत की जाती हैं, वहां प्राधिकरण उसके लिए कारण अभिलिखित करेगा ।</p> <p>(3) प्राधिकरण उपधारा (1) के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन करते समय, भारत की प्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, लोक व्यवस्था, शिष्टता या नैतिकता के विरुद्ध कृत्य नहीं करेगा ।</p> <p>(4) प्राधिकरण अपनी शक्तियों का प्रयोग और कृत्यों का निर्वहन करते समय पारदर्शिता सुनिश्चित करेगा ।</p>	<p>कराने के लिए समयावधि अधिकथित करना और सुनिश्चित करना ;</p> <p>(vii) अंतःसंबंध करारों का और सभी ऐसे अन्य विषयों के ऐसे रजिस्टर रखना जो विनियमों में उपबंधित किए जाएं ;</p> <p>(viii) खंड (vii) के अधीन रखे गए रजिस्टर को ऐसी फीस के संदाय पर और ऐसी अन्य अपेक्षाओं के अनुपालन पर जो विनियमों में उपबंधित की जाएं, जनता के किसी व्यक्ति के निरीक्षण के लिए खुला रखना ;</p> <p>(ix) सर्वव्यापी सेवा बाध्यताओं का प्रभावी अनुपालन सुनिश्चित करना ;</p> <p>(ग) ऐसी सेवाओं के संबंध में फीस और अन्य प्रभार ऐसी दरों पर उद्गृहीत करना जो विनियमों द्वारा अवधारित की जाएं ;</p> <p>(घ) ऐसे अन्य कृत्य का निर्वहन करना जिनके अन्तर्गत ऐसे प्रशासनिक और वित्तीय कृत्य भी हैं, जो उसे केन्द्रीय सरकार द्वारा सौंपे जाएं या जो इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक हों :</p> <p>परन्तु इस उपधारा के खंड (क) में विनिर्दिष्ट प्राधिकरण की सिफारिशें केन्द्रीय सरकार पर आबद्धकर नहीं होंगी :</p> <p>परन्तु यह और कि केन्द्रीय सरकार किसी सेवा प्रदाता को जारी की जाने वाली नई अनुज्ञप्ति की बाबत इस उपधारा के खंड (क) के उपखंड (i) और उपखंड (ii) में विनिर्दिष्ट विषयों की बाबत प्राधिकरण से सिफारिशों की ईप्सा करेगी और प्राधिकरण अपनी सिफारिशें उस तारीख से, जिसको केन्द्रीय सरकार</p>
---	--

	<p>सिफारिशों की ईप्सा करती है, 60 दिन की अवधि के भीतर अग्रेषित करेगा :</p> <p>परन्तु यह भी कि प्राधिकरण केन्द्रीय सरकार से ऐसी जानकारी या दस्तावेज, जो इस उपधारा के खंड (क) के उपखंड (i) और उपखंड (ii) के अधीन सिफारिश किए जाने के प्रयोजन के लिए आवश्यक हों, प्रस्तुत करने के लिए अनुरोध कर सकेगा और केन्द्रीय सरकार ऐसे अनुरोध की प्राप्ति से सात दिन की अवधि के भीतर ऐसी जानकारी का प्रदाय करेगी :</p> <p>परन्तु यह भी कि यदि दूसरे परन्तुक में विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर या ऐसी अवधि के भीतर जो केन्द्रीय सरकार और प्राधिकरण के बीच आपस में करार पाई जाए, प्राधिकरण से कोई सिफारिश प्राप्त नहीं होती है तो केन्द्रीय सरकार किसी सेवा प्रदाता को अनुज्ञप्ति जारी कर सकेगी :</p> <p>परन्तु यह भी कि यदि केन्द्रीय सरकार प्राधिकरण की उस सिफारिश पर विचार करने पर प्रथमदृष्ट्या इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि ऐसी सिफारिश स्वीकार नहीं की जा सकती या उसमें उपांतरण आवश्यक है, तो वह सिफारिश को प्राधिकरण को वापस पुनर्विचार के लिए निर्दिष्ट कर सकेगी और प्राधिकरण ऐसे निर्देश की प्राप्ति से पन्द्रह दिन की अवधि के भीतर सरकार द्वारा किए गए निर्देश पर विचार करने के पश्चात् अपनी सिफारिश केन्द्रीय सरकार को अग्रेषित कर सकेगा और सिफारिश के, यदि कोई हो, प्राप्त होने के पश्चात् केन्द्रीय सरकार अंतिम विनिश्चय करेगी ।</p> <p>(2) भारतीय तार अधिनियम, 1885 (1885 का 13) में किसी बात के होते हुए भी, प्राधिकरण समय-समय पर, आदेश</p>
--	--

<p>धारा 13.</p> <p>निदेश देने की प्राधिकरण की शक्ति – प्राधिकरण, धारा 11 की उपधारा (1) के अधीन अपने कृत्यों के निर्वहन के लिए, सेवा प्रदाताओं को, समय-समय पर, ऐसे निदेश दे सकेगा जो वह आवश्यक समझे ।</p> <p>अध्याय 4</p>	<p>द्वारा, उन दरों को राजपत्र में अधिसूचित कर सकेगा, जिन पर भारत के बाहर दूर-संचार सेवाएं इस अधिनियम के अधीन उपलब्ध कराई जाएंगी, जिनके अंतर्गत वे दरें भी हैं, जिन पर संदेशों को भारत के बाहर किसी देश को पारेषित किया जाएगा :</p> <p>परन्तु प्राधिकरण एक समान दूर-संचार सेवाओं की बाबत भिन्न-भिन्न व्यक्तियों या व्यक्तियों के वर्ग के लिए भिन्न-भिन्न दरें अधिसूचित कर सकेगा और जहां पूर्वोक्त रूप में भिन्न-भिन्न दरें नियत की जाती हैं, वहां प्राधिकरण उसके लिए कारण अभिलिखित करेगा ।</p> <p>(3) प्राधिकरण उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन करते समय, भारत की प्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, लोक व्यवस्था, शिष्टता या नैतिकता के विरुद्ध कृत्य नहीं करेगा ।</p> <p>(4) प्राधिकरण अपनी शक्तियों का प्रयोग और कृत्यों का निर्वहन करते समय पारदर्शिता सुनिश्चित करेगा ।</p> <p>धारा 13.</p> <p>निदेश देने की प्राधिकरण की शक्ति – प्राधिकरण, धारा 11 की उपधारा (1) के अधीन अपने कृत्यों के निर्वहन के लिए, सेवा प्रदाताओं को, समय-समय पर, ऐसे निदेश दे सकेगा जो वह आवश्यक समझे :</p> <p>परन्तु धारा 12 की उपधारा (4) के अधीन या इस धारा के अधीन कोई निदेश, धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (ख) में विनिर्दिष्ट विषयों के सिवाय जारी नहीं किया जाएगा ।</p> <p>अध्याय 4</p>
---	---

<p>विवादों का निपटारा</p> <p>धारा 14.</p> <p>विवादों का निपटारा करने का प्राधिकार — (1) यदि सेवा प्रदाताओं के बीच या सेवा प्रदाताओं और उपभोक्ताओं के किसी समूह के बीच उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट विषयों की बाबत कोई विवाद उत्पन्न होता है तो ऐसे विवाद अध्यक्ष द्वारा गठित किसी न्यायपीठ द्वारा न्यायनिर्णीत किए जाएंगे और ऐसा न्यायपीठ दो सदस्यों से मिलकर बनेगा :</p> <p>परन्तु यदि न्यायपीठ के सदस्यों में किसी प्रश्न या किन्हीं प्रश्नों पर मतभेद है तो वे ऐसे प्रश्न या प्रश्नों का, जिन पर उनका मतभेद है, कथन करेंगे और उन्हें ऐसे प्रश्न का प्रश्नों पर सुनवाई के लिए किसी तीसरे सदस्य को निर्देशित करेंगे और ऐसे प्रश्न या प्रश्नों का विनिश्चय उस सदस्य की राय के अनुसार किया जाएगा ।</p> <p>(2) उपधारा (1) के अधीन गठित न्यायपीठ, नियत दिन से ही, ऐसी सभी अधिकारिता, शक्तियों और प्राधिकार का प्रयोग करेगा जो उस तारीख से ठीक पहले किसी सिविल न्यायालय द्वारा निम्नलिखित से संबंधित किसी विषय के बारे में प्रयोक्तव्य थे, अर्थात् –</p> <p>(i) सेवा प्रदाताओं के बीच तकनीकी संगतता और अंतःसंबंध ;</p> <p>(ii) विभिन्न सेवा प्रदाताओं के बीच आमदनी बांटने की व्यवस्था ;</p> <p>(iii) दूर-संचार सेवाओं की क्वालिटी और उपभोक्ताओं का हित :</p> <p>परन्तु इस उपधारा की कोई बात निम्नलिखित से संबंधित विषयों की बाबत</p>	<p>अपील अधिकरण</p> <p>धारा 14.</p> <p>अपील अधिकरण की स्थापना – केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा,—</p> <p>(क) (i) अनुज्ञापक या किसी अनुज्ञप्तिधारी के बीच ;</p> <p>(ii) दो या अधिक सेवा प्रदाताओं के बीच ;</p> <p>(iii) सेवा प्रदाता और उपभोक्ताओं के समूह के बीच ;</p> <p>किसी विवाद को न्यायनिर्णीत करने के लिए, दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण नामक अपील अधिकरण की स्थापना कर सकेगी :</p> <p>परन्तु इस खंड की कोई बात निम्नलिखित से संबंधित विषयों की बाबत लागू नहीं होगी –</p> <p>(अ) एकाधिकार व्यापारिक व्यवहार, अवरोधक व्यापारिक व्यवहार और अनुचित व्यापारिक व्यवहार, जो एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम, 1969 (1969 का 54) की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन स्थापित एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार आयोग की अधिकारिता के अधीन है ;</p> <p>(आ) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 (1986 का 68) की धारा 9 के अधीन स्थापित विवाद प्रतितोष पीठ या उपभोक्ता विवाद प्रतितोष आयोग या राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद प्रतितोष आयोग के समक्ष चलने योग्य किसी व्यष्टिक उपभोक्ता का</p>
--	--

<p>लागू नहीं होगी –</p> <p>(क) एकाधिकार व्यापारिक व्यवहार, अवरोधक व्यापारिक व्यवहार और अनुचित व्यापारिक व्यवहार, जो एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम, 1969 की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन स्थापित एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार आयोग की अधिकारिता के अधीन है ;</p> <p>(ख) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 9 के अधीन स्थापित विवाद प्रतितोष पीठ या उपभोक्ता विवाद प्रतितोष आयोग या राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद प्रतितोष आयोग के समक्ष चलने योग्य किसी व्यक्ति उपभोक्ता का परिवाद ;</p> <p>(ग) भारतीय तार अधिनियम, 1885 की धारा 14 की उपधारा (2) में निर्दिष्ट तार प्राधिकारी और किसी अन्य व्यक्ति के बीच विवाद ।</p>	<p>परिवाद ;</p> <p>(इ) भारतीय तार अधिनियम, 1885 (1885 का 13) की धारा 14 की उपधारा (2) में निर्दिष्ट तार प्राधिकारी और किसी अन्य व्यक्ति के बीच विवाद ;</p> <p>(ख) इस अधिनियम के अधीन प्राधिकरण के किसी निदेश, विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध अपील की सुनवाई और उसका निपटारा करना ।</p> <p>14क. विवाद के निपटारे के लिए आवेदन और अपील अधिकरण को अपील – (1) केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या कोई स्थानीय प्राधिकरण या कोई व्यक्ति धारा 14 के खंड (क) में निर्दिष्ट किसी विवाद के न्यायनिर्णयन के लिए अपील अधिकरण को आवेदन करेगा ।</p> <p>(2) केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या कोई स्थानीय प्राधिकरण या प्राधिकरण के किसी निदेश, विनिश्चय या आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति अपील अधिकरण को अपील कर सकेगा ।</p> <p>(3) उपधारा (2) के अधीन प्रत्येक अपील उस तारीख, जिसको प्राधिकरण द्वारा दिए गए निदेश या किए गए आदेश या विनिश्चय की प्रति केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकरण या किसी व्यथित व्यक्ति को प्राप्त होती है, तीस दिन के भीतर की जा सकेगी और वह ऐसे प्ररूप में, ऐसी रीति में सत्यापित और ऐसी फीस के साथ होगी जो विहित की जाए :</p> <p>परन्तु अपील अधिकरण उक्त अवधि के अवसान के पश्चात् भी किसी अपील को ग्रहण कर सकेगा, यदि उसका यह</p>
---	---

	<p>समाधान हो जाता है कि उस अवधि के भीतर इसके फाइल न किए जाने के पर्याप्त कारण थे ।</p> <p>(4) अपील अधिकरण, उपधारा (1) के अधीन किसी आवेदन या उपधारा (2) के अधीन किसी अपील के प्राप्त होने पर, विवाद या अपील के पक्षकारों को सुने जाने का अवसर दिए जाने के पश्चात् उस पर ऐसा आदेश पारित कर सकेगा जिसे वह ठीक समझे ।</p> <p>(5) अपील अधिकरण, यथास्थिति, विवाद या अपील के पक्षकारों और प्राधिकरण को उसके द्वारा किए गए प्रत्येक आदेश की प्रति भेजेगा ।</p> <p>(6) उपधारा (1) के अधीन किए गए आवेदन या उपधारा (2) के अधीन की गई अपील पर उसके द्वारा यथासंभव शीघ्रता से कार्रवाई की जाएगी और उसके द्वारा, यथास्थिति, आवेदन या अपील की प्राप्ति से नब्बे दिन की अवधि के भीतर आवेदन या अपील का अंतिम रूप से निपटारा किए जाने का प्रयास किया जाएगा :</p> <p>परन्तु जहां ऐसे आवेदन या अपील का निपटारा उक्त नब्बे दिन की अवधि के भीतर नहीं किया जा सकता है वहां अपील अधिकरण उक्त अवधि के भीतर किसी आवेदन या अपील के निपटारा नहीं किए जाने के कारणों को लेखबद्ध करेगा ।</p> <p>(7) अपील अधिकरण उपधारा (1) के अधीन किए गए किसी आवेदन में किसी विवाद या उपधारा (2) के अधीन प्राधिकरण के किसी निदेश या आदेश या विनिश्चय के विरुद्ध की गई अपील की वैधता या सत्यता का परीक्षण करने के प्रयोजन के लिए स्वप्रेरणा से या अन्यथा ऐसे आवेदन या अपील के निपटारे से</p>
--	--

	<p>सुसंगत अभिलेखों को मंगाएगा और ऐसे आदेश करेगा, जो वह ठीक समझे ।</p> <p>14R लंबित मामलों का अंतरण – इस अधिनियम के अधीन अपील अधिकरण की स्थापना से ठीक पहले अधिकरण के समक्ष विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए लंबित सभी आवेदन उस तारीख को ऐसे अधिकरण को अंतरित हो जाएंगे :</p> <p>परन्तु अध्याय 4 के उपबंधों के अधीन न्यायनिर्णीत किए जाने वाले सभी विवाद जो दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण (संशोधन) अधिनियम, 2000 के ठीक पूर्व विद्यमान थे तब तक अधिकरण द्वारा उस अध्याय में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार न्यायनिर्णीत किए जाते रहेंगे जब तक कि इस अधिनियम के अधीन अपील अधिकरण की स्थापना नहीं हो जाती :</p> <p>परन्तु यह और कि प्रथम परन्तुक में निर्दिष्ट सभी मामले प्राधिकरण द्वारा अपील अधिकरण को धारा 14 के अधीन उसके स्थापित किए जाने पर अंतरित हो जाएंगे ।</p> <p>14द. अपीलों का अन्तरण – (1) दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण (संशोधन) अधिनियम, 2000 के प्रारंभ से ठीक पूर्व उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित सभी अपीलों, अधिकरण को धारा 14 के अधीन उसकी स्थापना पर अन्तरित हो जाएंगी ।</p> <p>(2) जहां उच्च न्यायालय से उपधारा (1) के अधीन कोई अपील अन्तरित की जाती है, वहां,—</p> <p>(क) उच्च न्यायालय, ऐसे अन्तरण के पश्चात् यथाशीघ्र ऐसी अपील के अभिलेख अपील अधिकरण को अग्रेषित करेगा ; और</p> <p>(ख) अपील अधिकरण, ऐसे</p>
--	---

	<p>अभिलेखों के प्राप्त होने पर, ऐसी अपीलों का उस प्रक्रम से, जिस पर वह ऐसे अन्तरण से पूर्व थे या किसी अन्य पूर्वतर प्रक्रम से या नए सिरे से, जो भी अपील अधिकरण ठीक समझे, कार्रवाई करेगा।</p>
<p>धारा 16</p> <p>प्राधिकरण की प्रक्रिया और शक्तियां –</p> <p>(1) प्राधिकरण नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों द्वारा मार्गदर्शित होगा।</p> <p>(2) प्राधिकरण को, इस अध्याय के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन करने के प्रयोजन के लिए, निम्नलिखित विषयों की बाबत वही शक्तियां होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन किसी सिविल न्यायालय में निहित हैं, अर्थात् –</p> <p>(क) किसी व्यक्ति को समन करना तथा हाजिर कराना और उसकी शपथ पर परीक्षा करना ;</p> <p>(ख) दस्तावेजों के प्रकटीकरण और पेश किए जाने की अपेक्षा करना ;</p> <p>(ग) शपथपत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना ;</p> <p>(घ) साक्षियों या दस्तावेजों के परीक्षण के लिए कमीशन निकालना ;</p> <p>(R) अपने विनिश्चयों का पुनर्विलोकन करना ;</p> <p>(च) किसी आवेदन को त्रुटि के</p>	<p>धारा 16</p> <p>प्राधिकरण की प्रक्रिया और शक्तियां –</p> <p>(1) अपील अधिकरण, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में अधिकथित प्रक्रिया द्वारा आबद्ध नहीं होगा, किंतु नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों द्वारा मार्गदर्शन प्राप्त करेगा और इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए अपील अधिकरण को स्वयं की प्रक्रिया विनियमित करने की शक्ति होगी।</p> <p>(2) अपील अधिकरण को, इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन करने के प्रयोजन के लिए, निम्नलिखित विषयों की बाबत वही शक्तियां होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन किसी सिविल न्यायालय में निहित हैं, अर्थात् –</p> <p>(क) किसी व्यक्ति को समन करना तथा हाजिर कराना और उसकी शपथ पर परीक्षा करना ;</p> <p>(ख) दस्तावेजों के प्रकटीकरण और पेश किए जाने की अपेक्षा करना ;</p> <p>(ग) शपथपत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना ;</p> <p>(घ) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) की धारा 123 और 124 के उपबंधों के अधीन रहते हुए किसी कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या दस्तावेज या ऐसे अभिलेख की प्रति या दस्तावेज मांगना ;</p>

<p>कारण खारिज करना या उसका एकपक्षीय रूप से विनिश्चय करना ;</p> <p>(छ) किसी आवेदन को त्रुटि के कारण खारिज करने के किसी आदेश को या अपने द्वारा एकपक्षीय रूप से पारित किसी आदेश को अपास्त करना ; और</p> <p>(ज) कोई अन्य विषय, जो विहित किया जाए ।</p> <p>(3) प्राधिकरण के समक्ष प्रत्येक कार्यवाही को भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) की धारा 193 तथा धारा 228 के अर्थ में और धारा 196 के प्रयोजनों के लिए न्यायिक कार्यवाही समझा जाएगा और प्राधिकरण को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 195 और अध्याय 26 के सभी प्रयोजनों के लिए सिविल न्यायालय समझा जाएगा ।</p> <p>धारा 19.</p> <p>प्राधिकरण या उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश डिक्री के तौर पर निष्पादित होंगे – प्राधिकरण द्वारा इस अधिनियम के अधीन या प्राधिकरण के किसी ऐसे आदेश के विरुद्ध किसी अपील में उच्च न्यायालय द्वारा किया गया प्रत्येक आदेश, यथास्थिति, प्राधिकरण के किसी अधिकारी या उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार द्वारा जारी किए गए प्रमाणपत्र पर सिविल न्यायालय की डिक्री समझा जाएगा और वह उस</p>	<p>(R) साक्षियों या दस्तावेजों के परीक्षण के लिए कमीशन निकालना ;</p> <p>(च) अपने विनिश्चयों का पुनर्विलोकन करना ;</p> <p>(छ) किसी आवेदन को त्रुटि के कारण खारिज करना या उसका एकपक्षीय रूप से विनिश्चय करना ;</p> <p>(ज) किसी आवेदन को त्रुटि के कारण खारिज करने के किसी आदेश को या अपने द्वारा एकपक्षीय रूप से पारित किसी आदेश को अपास्त करना ; और</p> <p>(झ) कोई अन्य विषय, जो विहित किया जाए ।</p> <p>(3) अपील अधिकरण के समक्ष प्रत्येक कार्यवाही को भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) की धारा 193 तथा धारा 228 के अर्थ में और धारा 196 के प्रयोजनों के लिए न्यायिक कार्यवाही समझा जाएगा और प्राधिकरण को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 195 और अध्याय 26 के सभी प्रयोजनों के लिए सिविल न्यायालय समझा जाएगा ।</p> <p>धारा 19.</p> <p>प्राधिकरण या उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश डिक्री के तौर पर निष्पादित होंगे –</p> <p>(1) इस अधिनियम के अधीन अपील अधिकरण द्वारा पारित कोई आदेश, अपील अधिकरण द्वारा सिविल न्यायालय की डिक्री के रूप में निष्पाद्य होगा और इस प्रयोजन के लिए अपील अधिकरण को सिविल न्यायालय की सभी शक्तियां प्राप्त होंगी ।</p> <p>(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात</p>
---	--

<p>रीति से निष्पादन करेगा जिससे उक्त न्यायालय की किसी डिक्री का निष्पादन किया जाता है ।</p>	<p>के होते हुए भी अपील अधिकरण, उसके द्वारा किए गए किसी आदेश को स्थानीय अधिकारिता रखने वाले किसी सिविल न्यायालय को सम्प्रेषित कर सकेगा और ऐसा सिविल न्यायालय वह आदेश इस प्रकार निष्पादित करेगा मानो वह उस न्यायालय द्वारा दी गई डिक्री हो ।</p>
<p>धारा 20.</p> <p>प्राधिकरण के या उच्च न्यायालय के आदेशों का पालन करने में जानबूझकर असफलता के लिए शास्ति – यदि कोई व्यक्ति, यथास्थिति, प्राधिकरण के आदेशों या उच्च न्यायालय के किसी आदेश का पालन करने में जानबूझकर असफल रहेगा तो वह जुर्माने से, जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा और दूसरे या पश्चात्वर्ती अपराध की दशा में, जुर्माने से, जो दो लाख रुपए तक का हो सकेगा और उल्लंघन जारी रहने की दशा में, अतिरिक्त जुर्माने से, जो उस प्रत्येक दिन के लिए, जिसके दौरान व्यतिक्रम जारी रहता है, दो लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।</p>	<p>धारा 20.</p> <p>प्राधिकरण के या उच्च न्यायालय के आदेशों का पालन करने में जानबूझकर असफलता के लिए शास्ति – यदि कोई व्यक्ति जानबूझकर अपील अधिकरण के आदेश का पालन करने में असफल रहता है तो वह जुर्माने से, जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा और दूसरे या पश्चात्वर्ती अपराध की दशा में, जुर्माने से, जो दो लाख रुपए तक का हो सकेगा और उल्लंघन जारी रहने की दशा में, अतिरिक्त जुर्माने से, जो उस प्रत्येक दिन के लिए, जिसके दौरान व्यतिक्रम जारी रहता है, दो लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।</p>

<p>धारा 36.</p> <p>विनियम बनाने की शक्ति - (1) प्राधिकरण, अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए, ऐसे विनियम बना सकेगा जो इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों से संगत हों ।</p> <p>(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे विनियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् -</p> <p>(क) धारा 8 की उपधारा (1) के अधीन प्राधिकरण के अधिवेशनों का समय तथा स्थान और ऐसे अधिवेशनों में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया, जिसके अन्तर्गत कार्य करने की आवश्यक गणपूर्ति भी है ;</p> <p>(ख) धारा 8 की उपधारा (4) के अधीन प्राधिकरण के अधिवेशनों में कार्य करना ;</p> <p>(ग) धारा 10 की उपधारा (2) के अधीन प्राधिकरण के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते तथा सेवा की अन्य शर्तें ;</p> <p>(घ) वे विषय जिनकी बाबत धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (ठ) के अधीन प्राधिकरण द्वारा रजिस्टर रखा जाएगा ;</p> <p>(R) फीस का उद्ग्रहण और ऐसी अन्य अपेक्षाएं अधिकथित करना जिनके पूरा करने पर धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (ड) के अधीन</p>	<p>धारा 36.</p> <p>विनियम बनाने की शक्ति - (1) प्राधिकरण, अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए, ऐसे विनियम बना सकेगा जो इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों से संगत हों ।</p> <p>(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे विनियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् -</p> <p>(क) धारा 8 की उपधारा (1) के अधीन प्राधिकरण के अधिवेशनों का समय तथा स्थान और ऐसे अधिवेशनों में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया, जिसके अन्तर्गत कार्य करने की आवश्यक गणपूर्ति भी है ;</p> <p>(ख) धारा 8 की उपधारा (4) के अधीन प्राधिकरण के अधिवेशनों में कार्य करना ;</p> <p>(ग) 2000 के अधिनियम सं. 2 द्वारा लोप किया गया ;</p> <p>(घ) वे विषय जिनकी बाबत धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (ठ) के अधीन प्राधिकरण द्वारा रजिस्टर रखा जाएगा ;</p> <p>(R) फीस का उद्ग्रहण और ऐसी अन्य अपेक्षाएं अधिकथित करना जिनके पूरा करने पर धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (ख) के उपखंड (viii) के अधीन रजिस्टर की प्रति प्राप्त की जा सकेगी ;</p> <p>(च) धारा 11 की उपधारा (1) के</p>
---	---

<p>रजिस्टर की प्रति प्राप्त की जा सकेगा ;</p> <p>(च) धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (त) के अधीन फीस और अन्य प्रभाओं का उद्ग्रहण ।</p>	<p>खंड (ग) के अधीन फीस और अन्य प्रभाओं का उद्ग्रहण ।</p>
---	--

23. अब हम इस न्यायालय द्वारा विनिर्मित प्रश्न पर विचार करेंगे, जिसका प्रथम पहलू अधिनियम की धारा 36 की व्याप्ति से संबंधित है ।

24. विद्वान् महा-सालिसिटर, श्री आर. एफ. नरीमन ने यह दलील दी कि अधिनियम के प्रयोजनों को पूरा करने के लिए विनियम बनाने की प्राधिकरण में निहित शक्ति अति व्यापक है और धारा 36(2), जिसमें विनिर्दिष्ट विषयों पर विनियम विरचित करने का उपबंध है, द्वारा नियंत्रित नहीं है । उन्होंने यह दलील दी कि यदि किसी कानूनी प्राधिकरण को साधारण निबंधनों में अधीनस्थ विधायन बनाने की शक्ति प्रदत्त की जाती है, तो विषयों का विशिष्टिकरण केवल दृष्टांतस्वरूप होता है और साधारण शक्ति की व्याप्ति सीमित नहीं हो जाती है । विद्वान् महा-सालिसिटर ने यह भी दलील दी कि अधिनियम के प्रयोजनों को पूरा करने के लिए प्राधिकरण अन्य धाराओं में विनिर्दिष्ट विभिन्न विषयों पर विनियम बना सकता है, जिसमें धारा 8(1), 8(4), 11(1)(ख), 12(4) और 13 भी सम्मिलित हैं । उन्होंने यह दलील दी कि धारा 36(1) और (2) के अधीन बनाए गए विनियम अधीनस्थ विधायन की प्रकृति के हैं और धारा 37 के निबंधनों के अनुसार संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखे जाने चाहिएं और संसद् इन्हें

अनुमोदित, उपांतरित या बातिल कर सकती है। विद्वान् महा-सालिसिटर ने आगे यह भी दलील दी कि धारा 36(2) के खंड (क), (ख) और (घ) के प्रति निर्देश करके धारा 36(1) का निर्बंधनात्मक निर्वचन इस उपबंध को निरर्थक बना देगा और न्यायालय को इस प्रक्रिया को नहीं अपनाना चाहिए।

25. भारत संचार निगम लिमिटेड की ओर से उपसंजात होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल, श्री ए. एस. चंडिओक ने यह दलील दी कि धारा 36 की उपधारा (1) का अर्थान्वयन प्राधिकरण को विनियम बनाने की असीमित शक्ति प्रदत्त करने वाली धारा के रूप में नहीं किया जाना चाहिए, नहीं तो धारा 12(4) और 13 जैसे दूसरे उपबंध अनावश्यक हो जाएंगे जो प्राधिकरण को कतिपय विषयों पर निदेश जारी करने के लिए सशक्त करते हैं। सिविल अपील सं. 6049/2005, 802/2006, 4523/2006 और 5184/2010 में अपीलार्थियों की ओर से उपसंजात होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल, श्री सी. एस. वैद्यनाथन ने यह दलील दी कि धारा 36(1) का अर्थान्वयन अधिनियम के अन्य उपबंधों से संगत किया जाना चाहिए और अन्य उपबंधों के अंतर्गत आने वाले विषयों पर विनियम नहीं बनाए जा सकते हैं। उन्होंने धारा 11(2) को निर्दिष्ट करते हुए यह दलील दी कि अधिकरण को वे दरें, जिन पर भारत में और भारत के बाहर दूर-संचार सेवाएं उपलब्ध कराई जानी हैं और जिनके अंतर्गत वे दरें भी हैं, जिन पर संदेशों को भारत के बाहर किसी देश को पारेषित किया जाएगा, नियत करते हुए आदेश जारी करने के लिए प्रदत्त शक्ति और धारा 12(4) और 13 के अधीन सेवा प्रदाताओं को निदेश जारी करने की प्राधिकरण में निहित शक्ति को धारा 36(1) के अधीन विनियम बनाकर नियंत्रित नहीं किया जा सकता है। श्री वैद्यनाथन ने इस बात पर जोर दिया कि यदि संसद् ने धारा 11(2) के अधीन प्राधिकरण को पारदर्शी तरीके से दरें अधिसूचित करने की शक्ति प्रदत्त की है, तो धारा 36(1) के अधीन शक्ति उस विषय पर विनियम बनाने के लिए प्रयुक्त नहीं की जा सकती है। विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 62 को निर्दिष्ट किया जो, उनके अनुसार, तात्विक रूप से धारा 11(2) के समान है और यह दलील दी कि पीटीसी इंडिया लिमिटेड बनाम केन्द्रीय विद्युत विनियामक आयोग¹ वाले मामले में के निर्णय के पैरा 15 को दृष्टिगत करते हुए इस धारा में विनिर्दिष्ट विषय पर विनियम नहीं बनाए जा सकते

¹[2010] 3 उम. नि. प. 264 = (2010) 4 एस. सी. सी. 603.

हैं। सिविल अपील सं. 271-281/2011 में अपीलार्थियों की ओर से उपसंजात होने वाले विद्वान् काउंसेल डा. ए. एम. सिंघवी ने यह दलील दी कि अधिनियम की धारा 36(1) का प्रवर्तन धारा 36(2) द्वारा नियंत्रित है, जिसमें अधिनियम के अधीन पूरे किए जाने के लिए अपेक्षित कुछ सचिवीय कृत्यों की बाबत विनियम बनाने के लिए उपबंध किया गया है तथा यह दलील दी कि प्राधिकरण विनिर्दिष्ट रूप से अन्य उपबंधों के अंतर्गत आने वाले विषयों पर विनियम नहीं बना सकता है। डा. सिंघवी ने यह दलील दी कि न्यायालय को धारा 36(1) का ऐसा निर्वचन नहीं करना चाहिए जो प्राधिकरण को बेलगाम बना दे और उसे प्रत्येक लिखत को एक विनियम के रूप में आकार देने के लिए समर्थ बनाए और तद्द्वारा उसे दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के समक्ष चुनौती देने से अपवर्जित कर दे। डा. सिंघवी द्वारा दी गई एक आनुषंगिक दलील यह है कि यदि अधिनियम के अन्य उपबंधों के अंतर्गत आने वाले विषयों पर विनियम बनाए जाते हैं, तो दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण अपनी अधिकांश अधिकारिता से निरावृत्त हो जाएगा और एक स्वतंत्र न्यायनिर्णायक निकाय को सृजित करने का प्रयोजन निष्फल हो जाएगा। विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल, श्री मुकुल रोहतगी ने यह दलील दी कि धारा 36(1) की व्याप्ति को इसकी उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट विषयों तक सीमित किया जाना चाहिए, नहीं तो यह धारा अधिनियम के अन्य उपबंधों, जिसमें धारा 11(2), (4), 12(4) और 13 सम्मिलित हैं, के असंगत बन जाएगी। कुछ अपीलों में उपसंजात होने वाले विद्वान् काउंसेल, रामजी श्रीनिवासन ने यह दलील दी कि धारा 36(1) के अधीन विनियम बनाने की शक्ति का प्रयोग धारा 11(1)(ख), 11(2), 12(4) और 13 में विनिर्दिष्ट विषयों पर अधिकरण की निदेश जारी करने की शक्ति को अकृत करने के लिए नहीं किया जा सकता है।

26. हमने संबंधित दलीलों पर विचार किया है। असंशोधित अधिनियम के अधीन प्राधिकरण के निम्नलिखित तीन प्रकार के कृत्य थे :-

सिफारिश करने वाले कृत्य

भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 1997 की धारा 11(1)(क) के अधीन प्राधिकरण से, स्वप्रेरणा से या अनुज्ञापक अर्थात् दूर-संचार विभाग अथवा सूचना और प्रसारण मंत्रालय के अनुरोध पर, प्रसारण और केबल सेवाओं के मामले में सिफारिश करना अपेक्षित है।

भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण को धारा 11(1)(क) के अनुसार, या तो स्वप्रेरणा से या अनुज्ञापक के अनुरोध पर निम्नलिखित विषयों पर सिफारिश करने की शक्ति है –

(i) नए सेवा प्रदाता के समावेशन की आवश्यकता और उसका समय निर्धारण ;

(ii) सेवा प्रदाता की अनुज्ञप्ति के निबंधन और शर्तें ;

(iii) अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों के अननुपालन के लिए अनुज्ञप्ति का प्रतिसंहरण ;

(iv) दूर-संचार सेवाओं के प्रचालन में प्रतियोगिता को सुकर बनाने और दक्षता वृद्धि के लिए उपाय करना जिससे कि ऐसी सेवाओं की अभिवृद्धि को सुकर बनाया जा सके ;

(v) सेवा प्रदाताओं द्वारा दी जाने वाली सेवाओं में प्रौद्योगिक सुधार ;

(vi) नेटवर्क में उपयोग किए गए उपस्कर का निरीक्षण के पश्चात् सेवा प्रदाताओं द्वारा उपयोग किए जाने वाले उपस्कर की किस्म ;

(vii) दूर-संचार प्रौद्योगिकी के विकास के लिए और दूर-संचार उद्योग के संबंध में साधारणतया किसी अन्य विषय के लिए उपाय ;

(viii) उपलब्ध परिदृश्य का दक्षतापूर्ण प्रबंधन ।

विनियामक कृत्य

प्राधिकरण के विनियामक और टैरिफ निर्धारण के कृत्य भी हैं, जैसे अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों का अनुपालन सुनिश्चित करना, सेवा प्रदाताओं द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सेवा की क्वालिटी के मानक अधिकथित करना और वे दरें अधिसूचित करना जिन पर दूर-संचार उपलब्ध कराया जाना है और सर्वव्यापी सेवा बाध्यताओं का प्रभावी अनुपालन सुनिश्चित करना । प्राधिकरण को किसी सेवा प्रदाता से किसी भी समय लिखित रूप में अपने कार्यकलापों के संबंध में जानकारी या स्पष्टीकरण मांगने की भी शक्ति है । प्राधिकरण के लिए अपनी शक्तियों का प्रयोग और कृत्यों का निर्वहन करते समय

पारदर्शिता सुनिश्चित करना अपेक्षित है। इसे अपने निदेशों का अतिक्रमण करने पर दंडित करने की शक्ति दी गई है।

उपभोक्ताओं/उपभोक्ता संगठनों, विशेषज्ञों आदि से प्राप्त प्रतिपुष्टि/अभ्यावेदन के माध्यम से भी उसकी एक अन्य पहुंच थी। प्राधिकरण द्वारा इन कृत्यों का बहुआयामी दृष्टिकोण के माध्यम से निर्वहन किया जा सकता था। इनमें से एक दृष्टिकोण सेवा प्रदाताओं से प्राप्त रिपोर्टों का विश्लेषण करना था। कतिपय मामलों में, प्राधिकरण अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए अपने आप कार्रवाई आरंभ कर सकता था।

न्यायनिर्णयन संबंधी कृत्य

प्रारंभ में, भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण सेवा प्रदाताओं के बीच या सेवा प्रदाताओं और उपभोक्ताओं के समूह के बीच तकनीकी संगतता और सेवा प्रदाताओं के मध्य अंतःसंबंध, सेवा प्रदाताओं के मध्य आमदनी को बांटने की व्यवस्था संबंधी, दूर-संचार सेवाओं की गुणवत्ता और उपभोक्ताओं के हितों से संबंधित विषयों पर विवादों का न्यायनिर्णयन करने के लिए भी सशक्त था।

27. वर्ष 2000 के संशोधन के पश्चात् प्राधिकरण स्वप्रेरणा से या अनुज्ञापक के अनुरोध पर धारा 11(1)(क)(i) से (viii) में प्रगणित विषयों पर सिफारिशें कर सकता है। प्राधिकरण से धारा 11(1)(ख) के अधीन इसके खंड (i) से (ix) में प्रगणित नौ कृत्य करने की अपेक्षा की गई है। इन खंडों में “सुनिश्चित”, “नियत”, “विनियमित” और “अधिकथित” जैसे विभिन्न शब्दों का प्रयोग किया गया है। “सुनिश्चित” शब्द के प्रयोग से यह विवक्षित है कि प्राधिकरण विशिष्ट विषय पर निदेश जारी कर सकता है। प्राधिकरण धारा 11(1)(ख) के विभिन्न खंडों के अधीन के कृत्यों के प्रभावी निर्वहन के लिए समुचित विनियम बना सकता है। उपखंड (iv) में अंतर्विष्ट “विनियमित” शब्द से यह दर्शित होता है कि सेवा प्रदाताओं के बीच दूर-संचार सेवाएं उपलब्ध कराने से व्युत्पन्न उनकी आमदनी को बांटने संबंधी व्यवस्था को सुकर बनाने के लिए प्राधिकरण या तो निदेश जारी कर सकता है या विनियम बना सकता है।

28. “विनियमित” और “विनियम” शब्दों का अनेक निर्णयों में निर्वचन किया गया है। हम उनमें से कुछ का उल्लेख कर सकते हैं। **वी. एस.**

राइस एंड आयल मिल्स बनाम आंध्र प्रदेश राज्य¹ वाले मामले में विद्युत के प्रदाय हेतु दस वर्ष की अवधि के लिए करार निष्पादित किए गए थे और करारों में उनके प्रचालन के दौरान दरों में वृद्धि करने के लिए सरकार को प्राधिकृत करने वाला कोई उपबंध अंतर्विष्ट नहीं था। तथापि, राज्य सरकार ने मद्रास आवश्यक वस्तु नियंत्रण और अध्यपेक्षा (अस्थायी शक्तियाँ) अधिनियम, 1949 की धारा 3(1) के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए करार की गई दरों में वृद्धि करने का आदेश जारी किया। इस आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गई कि करार किए गए टैरिफ में कोई वृद्धि करना धारा 3(1) की परिधि से बाहर था। मुख्य न्यायाधीश गजेन्द्रगडकर ने सांविधानिक न्यायपीठ की ओर से निर्णय सुनाते हुए यह मत व्यक्त किया :-

“दर में वृद्धि करके या दर को कम करके विनियमित करने हेतु राज्य को शक्ति प्रदत्त करने के लिए विनियमित शब्द पर्याप्त रूप से व्यापक है, कसौटी यह है कि वह कौन सी बात है जो प्रश्नगत आवश्यक वस्तु के प्रदाय को बनाए रखने, वृद्धि करने, या प्रदाय को सुनिश्चित करने के लिए तथा उचित मूल्य पर इसके साम्यपूर्ण वितरण और इसकी उपलब्धता की व्यवस्था करने के लिए आवश्यक या समीचीन है। उचित मूल्य की अवधारणा जिसे धारा 3(1) में अभिव्यक्त रूप से निर्दिष्ट किया गया है, का यह अर्थ नहीं है कि एक बार नियत कर दिया गया मूल्य या तो स्थिर रहेगा या विनियमित करने की शक्ति का प्रयोग करने के लिए इसे अवश्य कम किया जाना चाहिए। विनियमित करने की शक्ति का प्रयोग उचित मूल्य के संदाय को सुनिश्चित करने के लिए किया जा सकता है और उचित मूल्य का नियतन आवश्यक रूप से उन सभी सुसंगत और आर्थिक बातों के विवेचन पर निर्भर करेगा, जो ऐसे उचित मूल्य के अवधारण के लिए सहायक हैं। यदि सभी सुसंगत बातों पर निष्पक्ष विवेचन करने के पश्चात् उचित मूल्य नियत किए गए या वर्तमान मूल्य की बजाय उच्च होना उपदर्शित होता है, तब मूल्य विनियमित करने की शक्ति के अंतर्गत आवश्यक रूप से मूल्य में वृद्धि करने की शक्ति भी सम्मिलित होनी चाहिए जिससे कि इसे उचित बनाया जा सके। इसलिए करार किए गए टैरिफ दर में वृद्धि करने के आदेशों की विधिमान्यता को इस आधार पर दी गई चुनौती संघार्य नहीं है कि वे

¹ ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 1781.

धारा 3(1) की परिधि के बाहर हैं।”

29. **तमिलनाडु राज्य बनाम हिंद स्टोन**¹ वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि “विनियमित” शब्द का निर्वचन “प्रतिषेध” शब्द को इसके दायरे में सम्मिलित करने के लिए किया जाना चाहिए। उस निर्णय में (पैरा 10) की गई कुछ मताभिव्यक्तियां नीचे उद्धृत की जाती हैं :-

“हम यह नहीं समझते कि “विनियमन” का वही निश्चित अर्थ है जैसा कि “प्रतिषेध” में नहीं है। अधिक उस संदर्भ पर निर्भर करता है जिसमें कि किसी कानून में उस अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है और अनुध्यात विनियमन द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य पर निर्भर करता है। जी. के. कृष्णन बनाम तमिलनाडु राज्य [(1975) 1 एस. सी. सी. 375] वाले मामले में न्यायाधिपति मैथ्यु ने यह मत व्यक्त किया था : “विनियमन” शब्द का कोई निश्चित अर्थबोध नहीं है। इसका अर्थ उस बात के स्वरूप के अनुसार बदलता रहता है जिसको कि यह लागू होता है। आधुनिक कानूनों में जैसा कि वे आर्थिक और सामाजिक कार्यवाहियों से संबंधित हैं, “विनियमन” शब्द का आवश्यकता के कारण निर्वचन इतना व्यापक होना चाहिए कि कतिपय स्थितियों में इसे प्राइवेट सेक्टर से पब्लिक सेक्टर में प्रतियोगिता को अपवर्जित करना चाहिए। खास तौर पर एक कल्याणकारी राज्य में। प्रिवी काउन्सिल ने कामनवैल्थ ऑफ आस्ट्रेलिया बनाम बैंक आफ न्यू साउथ वेल्स [(1949) 2 आल ई. आर.] वाले मामले में यह उपदर्शित किया गया था – और जो कुछ उसमें कहा गया था, उससे हम सहमत हैं – कि यह समस्या कि क्या कोई अधिनियमिति विनियामक थी या उससे कुछ अधिक थी या क्या निर्बन्धन प्रत्यक्ष था या केवल दूरस्थ था या आनुषंगिक रूप से अंतर्वलित था या राजनैतिक, सामाजिक या आर्थिक विचार के रूप में इतना विधिक नहीं था और यह अधिकथित नहीं किया जा सकता कि किन्हीं भी स्थितियों में, राज्य में या कामनवैल्थ अभिकरण में, प्रतियोगिता का अपवर्जन न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता, जिससे कि एकाधिकार सृजित किया जा सके। यह कहा गया था कि प्रत्येक मामले को उसके अपने तथ्यों पर और इसकी अपनी समय की

¹ [1982] 1 उम. नि. प. 168 = (1981) 2 एस. सी. सी. 205.

निश्चितता और परिस्थितियों में निर्णीत किया जाना चाहिए और यह होना चाहिए कि कुछ कार्यवाहियों के संबंध में और कुछ सामाजिक विकास के स्तर पर राज्य के एकाधिकार के दृष्टिकोण का प्रतिषेध विनियमन का एकमात्र व्यावहारिक और युक्तियुक्त ढंग था। वह कानून जिससे हम संबंधित हैं, खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम का उद्देश्य, जैसा कि हमने एक से अधिक बार कह दिया है, संरक्षण और खनिजों का विवेकशील और विभेदकारी शोषण है। निश्चित रूप से, कमी वाले खनिज के मामले में राज्य द्वारा या उसके किसी अभिकरण को शोषण के लिए अनुज्ञात करना और प्राइवेट अभिकरणों द्वारा शोषण को प्रतिषिद्ध करना संरक्षण और विवेकशील शोषण का प्रभावी ढंग है। यदि आप भविष्य के लिए संरक्षण करना चाहते हैं तो आपको वर्तमान में प्रतिषेध करना चाहिए। हमें इस बात में कोई संदेह नहीं है कि कतिपय मामलों में पट्टों को प्रतिषिद्ध करना अधिनियम की धारा 15 द्वारा अनुध्यात विनियमन का एक भाग है।”

30. के. रामनाथन बनाम तमिलनाडु राज्य¹ वाले मामले में न्यायालय ने आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3(2)(घ) में आने वाले शब्द “विनियमन” का निर्वचन किया और यह मत व्यक्त किया :-

“‘विनियमन’ शब्द का कोई भी ऐसा कठोर और अनम्य अर्थ नहीं हो सकता, जो ‘प्रतिषेध’ को अपवर्जित करे। ‘विनियमित करना’ शब्द की ऐसी परिभाषा देना कठिन है, जिसका अर्थ बिल्कुल निश्चित हो। यह ऐसा शब्द है, जिसका अभिप्राय विस्तृत है और जिसका अर्थ भी विस्तृत होता है और जिसका विस्तार बहुत व्यापक होता है। उसके अर्थ के संबंध में और तथ्यों की किसी विशिष्ट स्थिति को लागू करने के संबंध में भिन्न-भिन्न मत हैं, कुछ न्यायालयों ने इस पद का कुछ निर्बन्धित अर्थ लगाया है और अन्य न्यायालयों ने इसका उदार अर्थान्वयन किया है। कार्पस जूरिस सेकेंडम के खंड 76 के पृष्ठ 611 पर भिन्न-भिन्न प्रकार के अर्थ दिए गए हैं -

‘रेगूलेट’ (विनियमित करना) की परिभाषा भिन्न-भिन्न रूप से की गई है और उससे यह अभिप्रेत है - समायोजित करना,

¹ [1985] 2 उम. नि. प. 578 = (1985) 2 एस. सी. सी. 116.

आदेश करना या नियम, पद्धति या स्थापित ढंग द्वारा शासन करना ; नियम, पद्धति या स्थापित ढंग अथवा शासी सिद्धांतों या विधियों द्वारा समायोजन या नियंत्रण करना ; शासन करना ; नियम द्वारा शासन करना ; कतिपय नियमों या निर्बन्धनों द्वारा या के अध्यक्षीन शासन करना ; किसी नियम के अनुसार शासन करना या निदेश देना ; नियमों और विनियमों द्वारा नियंत्रण करना, शासन करना या निदेश देना ।

‘रेगुलेट’ (विनियमित करना) को इस प्रकार भी परिभाषित किया गया है जिससे अभिप्रेत है – निदेश देना, नियम या निर्बन्धन द्वारा निदेश देना ; कतिपय मानकों, विधियों या नियमों के अनुसार निदेश देना या उपबंध करना ; शासन करना ; संचालन करना ; नियत या स्थापित करना ; अवरुद्ध करना ; निर्बन्धित करना ।

वेबस्टर के थर्ड न्यू इन्टरनेशनल डिक्शनरी, खंड 2, पृष्ठ 1913 पर और शार्टर आक्सफोर्ड डिक्शनरी, खंड 2, तृतीय संस्करण, पृष्ठ 1784 पर भी देखिए ।

यह बात प्रायः कही गई है कि यह आवश्यक नहीं है कि विनियमित करने की शक्ति के अंतर्गत प्रतिषेध की शक्ति भी हो और मामूली तौर से “विनियमित करना” शब्द “प्रतिषेध करना” शब्द का पर्यायवाची नहीं है । साधारण अर्थ में यह सच है और इस अर्थ में भी यह सच है कि मात्र विनियमित करना वही नहीं है जो कि संपूर्ण प्रतिषेध होता है । इसके साथ ही विनियमित करने की शक्ति के साथ-साथ विनियमित करने के अध्यक्षीन रहते हुए किसी वस्तु पर पूर्ण शक्ति भी है और निर्बन्धनात्मक शब्दों के अभाव में ऐसी शक्ति की बाबत यह अवश्य ही माना जाना चाहिए कि वह पूरे विषय पर पूर्ण है । उससे शासन करना, निदेश देना या नियंत्रित करने की शक्ति विवक्षित है और उसमें अनुसरण किए जाने वाले नियम या मार्गदर्शक सिद्धांत के अपनाने की या विनियमित किए जाने वाले विषय से संबंधित कोई नियम बनाने की बात अंतर्ग्रस्त है । विनियमित करने की शक्ति में नियंत्रित करने की शक्ति विवक्षित है और उससे कतिपय परिस्थितियों में प्रतिषेध करने की शक्ति विवक्षित हो सकती है, जैसे कि वहां जहां कि सर्वाधिक अच्छे या मात्र प्रभावोत्पादक विनियमन में दमन अंतर्विष्ट हो सकता है । अतः यह बात प्रतीत होती है कि

“प्रतिषेध” को अपवर्जित करे। “विनियमन” शब्द का ऐसा कोई अनन्य अर्थ नहीं हो सकता, जो “प्रतिषेध” शब्द को अपवर्जित करे। उसके भिन्न-भिन्न अर्थ होते हैं और उसे ऐसे संदर्भ से अर्थ प्राप्त होता है, जिसमें उसका उपयोग विधि के प्रयोजन और उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किया जाता है, और निश्चित रूप से न्यायालय को उस रिश्ते को ध्यान में रखना चाहिए, जिसके उपचार करने की ईप्सा विधान-मंडल करता है।

निश्चित रूप से जो प्रश्न है, वह सीमा का है और इसके लिए ऐसा कोई अभिनिश्चित स्थल नियत करना असंभव है, जहां कि “विनियमन” समाप्त होता है और “प्रतिषेध” आरम्भ होता है। हम बात की व्याख्या कर सकते हैं कि भिन्न-भिन्न मस्तिष्कों में “विनियमन” शब्द के अर्थ के संबंध में किस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रतिक्रिया होती है, जो उस संदर्भ पर, जिसमें उसका उपयोग किया जाता है और विधान के प्रयोजन और उद्देश्य पर निर्भर है। स्लाटरी **बनाम** नेलोर [(एल. आर. (1888) 13 ए. सी. 446] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल की जुडिशियल कमेटी के समक्ष यह प्रश्न उत्पन्न हुआ था कि क्या ऐसी कोई उपविधि, किसी विशिष्ट सामंजस्य की स्थिति में पूरी तरह से प्रतिषेधात्मक नजरबंदी के कारण अधिकारातीत है, क्योंकि नगरपालिका को ऐसी नियामक नजरबंदियां करने की ही शक्ति है, जबकि ऐसी उपविधि, प्रश्नगत सामंजस्य की दृष्टि से, पूरी तरह से प्रतिषिद्ध करती है और लार्ड हॉबहाउस ने प्रिवी कौंसिल का निर्णय सुनाते हुए यह मत व्यक्त किया था –

‘किसी नियम या उपविधि के संबंध में यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता वह केवल इसलिए अधिकारातीत है क्योंकि वह वहां प्रतिषेध करती है जहां कि वह विनियमित करने के लिए सशक्त है, क्योंकि प्रायः विनियमन में प्रतिषेध अन्तर्ग्रस्त होता है।’

31. **जियाजीराव कॉटन मिल्स लिमिटेड बनाम मध्य प्रदेश विद्युत बोर्ड**¹ वाले मामले में वैध रूप से नियत सीमा के परे उपभोग की गई विद्युत के लिए उच्च प्रभार/टैरिफ का उपबंध करने वाले आदेशों की विधिमान्यता को विद्युत अधिनियम की धारा 22(2), जो राज्य सरकार को विद्युत के

¹ (1989) सप्ली. (2) एस. सी. सी. 52.

प्रदाय, वितरण और उपभोग को विनियमित करने के लिए समुचित आदेश जारी करने के लिए अनुज्ञात करती है, को दृष्टिगत करते हुए मान्य ठहराया गया था। यह अभिनिर्धारित किया गया कि न्यायालय को “विनियमित” अभिव्यक्ति का निर्वचन करते समय आवश्यक रूप से अभीष्ट उद्देश्य और उपचार किए जाने के लिए ईप्सित रिष्टि को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। बोर्ड को अपने ग्राहकों को प्रदाय करने के लिए उपलब्ध विद्युत की कमी के कारण आदेश जारी करने की आवश्यकता उत्पन्न हुई और इसलिए इस पृष्ठभूमि में उच्च प्रभार/टैरिफ की मांग को एक विनियामक उपाय का भाग होना अभिनिर्धारित किया गया।

32. दीपक थियेटर बनाम पंजाब राज्य¹ वाले मामले में इस न्यायालय ने सिनेमा देखने जाने वालों के संदाय सामर्थ्य के अनुसार स्थानों के वर्गीकरण और दाखिले की दरों के नियतन को यह मत व्यक्त करते हुए मान्य ठहराया कि यह बात विनियम बनाने की शक्ति का अभिन्न अंग है और दाखिले की दरों का नियतन अधिनियम के अधीन बनाए गए विनियमों को अग्रसर करने की एक विधिमान्य प्रासंगिक या आनुषंगिक शक्ति बन गई है।

33. क्वेरी आनर्स एसोसिएशन बनाम बिहार राज्य² वाले मामले में भी “विनियमन” शब्द का निर्वचन खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 में अंतर्विष्ट उपबंधों के संदर्भ में किया गया था और यह अभिनिर्धारित किया गया :-

“वर्तमान मामले पर वापस आने पर हमारा यह निष्कर्ष है कि “खान और खनिज विकास का विनियमन” शब्द इस अधिनियम की प्रस्तावना और उद्देश्यों तथा कारणों के कथन, दोनों में, अंतःस्थापित किए गए हैं। इससे पूर्व हम यह पाते हैं कि हमारे संविधान की प्रस्तावना सुस्पष्ट शब्दों में हमारे नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय की प्राप्ति को अभिव्यक्त करती है। इसी पृष्ठभूमि और अधिनियम के उपबंधों के संदर्भ में, हमें “विनियमन” शब्द का अर्थ लगाना होगा। “विनियमन” शब्द का अर्थ भिन्न-भिन्न संदर्भ में अलग-अलग हो सकता है किंतु इस पर आर्थिक और सामाजिक कार्यकलापों के संबंध में विचार करते हुए, जिसमें खानों

¹ (1992) सप्ली. (1) एस. सी. सी. 684.

² (2000) 8 एस. सी. सी. 655.

के विकास और उत्खनन, पारिस्थितिक और वातावरण संबंधी कारक भी सम्मिलित हैं और ऐसे कार्यकलापों के विकास और नियंत्रण में राज्य के योगदान सहित इसकी सम्पदा अर्थात् खनिजों को अलग करने, स्वामिस्वों की दर नियत करना भी इसके अर्थ के अंतर्गत आएगा।”

34. इस संबंध में **उत्तर प्रदेश केन यूनियन फेडरेशन बनाम पश्चिम उत्तर प्रदेश सुगर मिल्स एसोसिएशन¹** वाले मामले के निर्णय के प्रति भी निर्देश किया जा सकता है। उस मामले में, न्यायालय ने उत्तर प्रदेश गन्ना (आपूर्ति और विक्रय विनियमन) अधिनियम, 1953 में आने वाले “विनियमन” शब्द का निर्वचन किया और यह मत व्यक्त किया :-

“‘रेगुलेट’ (विनियमित करना) से नियंत्रण करना या नियम द्वारा या शासी सिद्धांतों के अध्यक्षीन रहते हुए समायोजित करना अभिप्रेत है। यह व्यापक प्रभाव का शब्द है जिसका न केवल अधिनियम में विनिर्दिष्ट रूप से प्रगणित पहलुओं को समाविष्ट करते हुए, अपितु इसके दायरे में सद्भावपूर्वक परिकल्पित विनियम की आनुषंगिक शक्तियां समाविष्ट करते हुए, विस्तृत अर्थ है और इसके अर्थ को उस संदर्भ में जिस में इसका प्रयोग किया गया है और कानून के प्रयोजन के संदर्भ में अभिनिश्चित किया जाना चाहिए।”

35. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि “विनियमित करना” शब्द निदेश जारी करने या विनियम बनाने के लिए पर्याप्त रूप से नम्य है और केवल यह तथ्य कि धारा 11(1)(ख) के खंड (vii) और (viii) में आने वाली अभिव्यक्ति “जैसाकि विनियमों में उपबंधित किया जाए” इस उपधारा के अन्य खंडों में प्रयुक्त नहीं की गई है, इसका यह अर्थ नहीं है कि धारा 11(1)(ख) के खंड (i) से (vi) में विनिर्दिष्ट विषयों पर धारा 36(1) के अधीन विनियम नहीं बनाए जा सकते हैं। वास्तव में, प्राधिकरण धारा 36 के अधीन विनियम बनाकर खंड (i) से (vi) सहित धारा 11(1)(ख) के विभिन्न खंडों के अधीन कृत्यों के प्रयोग को सुकर बना सकती है।

36. अब हम धारा 36 पर विचार करेंगे। प्राधिकरण इस धारा की उपधारा (1) के अधीन धारा 11, 12 और 13 सहित अधिनियम के विभिन्न उपबंधों में विनिर्दिष्ट अधिनियम के प्रयोजनों को पूरा करने के लिए विनियम बना सकता है। धारा 36(1) के अधीन शक्ति का प्रयोग इस शर्त

¹ (2004) 5 एस. सी. सी. 430.

के साथ किया जा सकता है कि विनियम तथा तद्धीन बनाए गए नियम अवश्य अधिनियम के संगत होने चाहिए। प्राधिकरण की विनियम बनाने की शक्ति पर कोई अन्य निर्बंधन नहीं है। धारा 37 के निबंधनों के अनुसार, विनियमों को संसद् के समक्ष रखा जाना आवश्यक है, जो विनियमों का अनुमोदन कर सकती है, उपांतरण कर सकती है या अकृत कर सकती है। धारा 36(2), जो “उपधारा (1) के अधीन शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना” शब्दों के साथ आरंभ होती है, में उन विभिन्न विषयों को विनिर्दिष्ट किया गया है जिन पर प्राधिकरण द्वारा विनियम बनाए जा सकते हैं। इन विषयों में से तीन विषय प्राधिकरण के अधिवेशनों, इन अधिवेशनों में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया, अधिवेशनों के कारबार और प्राधिकरण द्वारा बनाए रखे जाने वाले रजिस्टर के संबंध में हैं। धारा 36(2) के खंड (R) और (च) में विनिर्दिष्ट शेष दो विषय सीधे तौर पर धारा 11(1)(ख) (viii) और 11(1)(ग) के प्रति निर्देश्य हैं। ये प्राधिकरण के मूलभूत कृत्य हैं। तथापि, धारा 36(2) की भाषा में ऐसी कोई बात नहीं है जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता हो कि इस धारा में अंतर्विष्ट उपबंध प्राधिकरण द्वारा धारा 36(1) के अधीन शक्ति के प्रयोग को नियंत्रित करते हैं या धारा 36(2) धारा 36(1) की व्याप्ति को निर्बंधित करती है।

37. यह स्थिर विधि है कि यदि किसी प्राधिकरण/निकाय को साधारण शब्दों में अधीनस्थ विधायन बनाने की शक्ति प्रदत्त की गई है, तो विषयों का विशिष्टिकरण मात्र दृष्टांत स्वरूप होता है और इससे साधारण शक्ति की व्याप्ति सीमित नहीं होती है। **एम्परर बनाम शिवनाथ बनर्जी**¹ वाले मामले में प्रिवी कौंसिल ने फेडरल न्यायालय के निर्णय की सत्यता पर विचार किया था, जिसने यह अभिनिर्धारित किया था कि भारत रक्षा अधिनियम, 1939 की धारा 3(2) के खंड (झ) के अधीन बनाए गए भारत रक्षा नियमों का नियम 26 अधिनियम के उपबंधों के अधिकारातीत है। प्रिवी कौंसिल ने फेडरल न्यायालय के निर्णय को उलटते हुए यह मत व्यक्त किया :-

“न्यायालय की राय में, उपधारा (2) में दिया गया कृत्य मात्र एक दृष्टांत है ; नियम बनाने की शक्ति उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त की गई है, और वे नियम जिनके प्रति उपधारा (2) के आरंभिक वाक्य में निर्देश किया गया है ऐसे ‘नियम’ हैं जो उपधारा (1) द्वारा प्राधिकृत और इसके अधीन बनाए गए हैं ; उपधारा (2) के उपबंध उपधारा (1)

¹ ए. आई. आर. 1942 पी. सी. 156.

के निर्बंधनकारी नहीं हैं, जैसाकि वास्तव में, 'उपधारा (1) के द्वारा प्रदत्त शक्तियों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना' शब्दों द्वारा अभिव्यक्त रूप से कथित है ।¹

38. **शिवनाथ बनर्जी** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित की गई प्रतिपादना का इस न्यायालय द्वारा अनेक मामलों में अनुसरण किया गया है । **अफज़ल उल्लाह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**¹ वाले मामले में सांविधानिक न्यायपीठ ने नगरपालिका बोर्ड, टांडा द्वारा बनाई गई उपविधि सं. 3 की विधिमाम्यता को दी गई चुनौती पर विचार किया था । अपीलार्थी ने उपविधि को इस आधार पर प्रश्नगत किया था कि यह उपविधि यूनाइटेड प्रोविन्सिज म्यूनिसिपैलिटिज़ ऐक्ट, 1916 की धारा 241 के उपबंधों के अधिकारातीत है । उस मामले के तथ्य ये थे कि अपीलार्थी ने खाद्यान्न, सब्जियां, फल, मछली इत्यादि बेचने के लिए एक बाज़ार स्थापित किया था । नगरपालिका बोर्ड के अध्यक्ष ने अपीलार्थी को उससे बाजार चलाने के लिए अनुज्ञप्ति अभिप्राप्त करने की अपेक्षा करते हुए एक सूचना जारी की और उसमें यह उपदर्शन किया गया कि यदि वह ऐसा करने में असफल रहता है, तो उसके विरुद्ध दांडिक कार्यवाहियां आरंभ की जाएंगी । अपीलार्थी द्वारा अपेक्षित अनुज्ञप्ति लेने में असफल रहने पर उसका 1960 के आपराधिक मामला सं. 141 में तहसीलदार, टांडा द्वारा विचारण किया गया । तहसीलदार ने अपीलार्थी को इस आधार पर दोषमुक्त कर दिया कि अभियोजन पक्ष इस तथ्य को साबित करने में असफल रहा है कि जिस भूमि पर बाजार जिसमें सब्जियां, फल और मछली बेचे जाते हैं स्थापित है, वह अपीलार्थी की है । दोषमुक्ति के आदेश को उच्च न्यायालय द्वारा अपास्त कर दिया गया और अपीलार्थी को सुसंगत उपविधियों के खंड (3) के साथ पठित अधिनियम, 1916 की धारा 299(1) के अधीन दोषसिद्ध किया गया । इस न्यायालय के समक्ष फाइल की गई अपील में यह दलील दी गई कि बोर्ड द्वारा पारित की गई उपविधि 3(क) और अन्य विधियां अधिनियम की धारा 241 के उपबंधों के अधिकारातीत हैं । सांविधानिक न्यायपीठ ने अधिनियम की धारा 241 और 298 के उपबंधों और धारा 298(2) के उन विभिन्न खंडों को निर्दिष्ट किया, जिनमें उन विषयों को विनिर्दिष्ट किया गया है जिन पर उपविधियां बनाई जा सकती हैं और यह मत व्यक्त किया :-

¹ [1964] 4 एस. सी. आर. 991.

“यदि उक्त खंडों से आक्षेपित उपविधि न्यायोचित नहीं लगती है, तो इस बात में तनिक संदेह हो सकता है कि उक्त उपविधियां धारा 298(1) के अधीन बोर्ड को प्रदत्त की गई साधारण शक्ति से न्यायोचित होंगी। अब यह सुस्थिर है कि विनिर्दिष्ट उपबंध, जैसेकि धारा 298(2) के कई खंडों में अंतर्विष्ट हैं, मात्र दृष्टांत स्वरूप हैं और उन्हें धारा 298(1) द्वारा विहित शक्तियों की व्यापकता के निर्बंधनकारी के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है (एम्परर बनाम शिवनाथ बनर्जी वाला मामला देखें)। यदि धारा 298(1) द्वारा विनिर्दिष्ट की गई शक्तियां अति व्यापक हैं और इन शक्तियों की अपनी व्याप्ति के भीतर ऐसी उपविधियां आती हैं, जिन पर हम वर्तमान अपील में विचार कर रहे हैं, तब यह नहीं कहा जा सकता है कि धारा 298(2) के अधीन प्रगणित शक्तियां धारा 298(1) द्वारा प्रयुक्त साधारण शब्दों से नियंत्रित हैं। ये पश्चात्वर्ती खंड मात्र दृष्टांत हैं और बोर्ड को प्रदत्त सभी शक्तियां इनसे निःशेष नहीं हो जाती हैं जिससे कि धारा 298(2) द्वारा विनिर्दिष्ट की गई शक्तियों के अंतर्गत न आने वाले किसी मामले को धारा 298(1) द्वारा भली-भांति संरक्षित किया जा सके, बशर्ते, निस्संदेह, आक्षेपित उपविधि को धारा 298(1) की अपेक्षाओं के प्रति निर्देश से न्यायोचित ठहराया जा सकता हो। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा बाजारों के विषय में बनाई गई आक्षेपित उपविधियां अधिनियम के अधीन नगरपालिका प्रशासन को अग्रसर करने के लिए हैं, और इसलिए धारा 298(1) के उपबंधों पर लागू होती हैं। अतः, हमारा समाधान हो गया है कि उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालकर सही किया है कि आक्षेपित उपविधियां विधिमान्य हैं।”

(बल देने के लिए रेखांकित किया गया है)

39. रोहतक हिसार जिला विद्युत प्रदाय कंपनी लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य¹ वाले मामले में इस न्यायालय ने उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अधीन राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति पर विचार किया और यह मत व्यक्त किया :-

“धारा 15(1) अधिनियम के प्रयोजनों को पूरा करने हेतु नियम

¹ ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 1471.

बनाने के लिए समुचित सरकार को व्यापक शक्तियां प्रदत्त करती है और धारा 15(2) खंड (क) से (R) में प्रगणित उन कुछ विषयों को विनिर्दिष्ट करती है, जिनकी बाबत नियम बनाए जा सकते हैं। यह सुस्थिर है कि उपधारा (2) में विशिष्ट विषयों के प्रगणन से धारा 15 की उपधारा (1) के द्वारा समुचित सरकार को प्रदत्त की गई शक्ति की व्यापकता नियंत्रित या सीमित नहीं होगी; और इसलिए यदि यह प्रतीत होता है कि समुचित सरकार द्वारा जोड़ी गई मद का रोजगार की शर्तों से संबंध है, तो इसके परिवर्धन को विधि की दृष्टि से अविधिमान्य होने के रूप में चुनौती नहीं दी जा सकती है।”

(बल देने के लिए रेखांकित किया गया है)

40. **के. रामनाथन बनाम तमिलनाडु राज्य** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3(1), (2) और धारा 5 की व्याप्ति पर विचार किया था। अपीलार्थी और तंजावुर जिले के अन्य कृषकों ने केन्द्रीय सरकार द्वारा धान के जिलों से बाहर परिवहन, परिचलन या अन्यथा ले जाने पर पूर्ण प्रतिबंध लगाते हुए आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3 के साथ पठित धारा 5 के अधीन जारी किए गए आदेश के खंड 3(1क) की संवैधानिक विधिमान्यता को चुनौती दी थी। उच्च न्यायालय ने उनकी चुनौती को नामंजूर कर दिया और रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया। इस न्यायालय के समक्ष यह दलील दी गई कि अधिनियम की धारा 5 के अधीन शक्ति के प्रत्यायोजन का आवश्यक रूप से निर्बंधित निर्वचन किया जाना चाहिए। इस न्यायालय ने इस दलील को नामंजूर करते हुए **शिवनाथ बनर्जी** (उपरोक्त) और **संतोष कुमार जैन बनाम राज्य**¹ वाले मामलों में के निर्णयों को निर्दिष्ट किया और यह मत व्यक्त किया :-

“तथापि, अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसिल ने जोरदार रूप से यह दलील दी है कि केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिनियम की धारा 5 के अधीन किया गया शक्तियों का प्रत्यायोजन आवश्यक रूप से ‘ऐसे विषयों’ और ‘ऐसी शर्तों’ के अधीन रहते हुए, जैसीकि अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाएं, के संबंध में होना चाहिए। विद्वान् काउंसिल की ओर से किया गया संपूर्ण प्रयास आक्षेपित आदेश की व्याप्ति और परिधि को अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) के खंड (घ) तक

¹ ए. आई. आर. 1951 एस. सी. 201.

सीमित करना है जिसमें 'विनियमित करने के लिए' शब्द का प्रयोग किया गया है और इसे धारा 3 की उपधारा (1), जिसमें 'विनियमित करने के लिए' या 'प्रतिषिद्ध करने के लिए' शब्दों का प्रयोग किया गया है, की परिधि से बाहर करना है। अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) और (2) के निर्वचन का उनके सामान्य स्थापन के अनुसार यह सही तरीका नहीं है। धारा 3 का निर्बंधित अर्थान्वयन, जिसके लिए अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसिल द्वारा दलील दी गई है, अधिनियम की स्कीम को पूर्णतः अव्यवहार्य बना देगा। जैसाकि पहले ही उपदर्शित किया गया है, इस प्रकार का आदेश करने की शक्ति का स्रोत अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) है और उपधारा (2) में उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त की गई साधारण शक्तियों का मात्र दृष्टांत दिया गया है। अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) 'उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त की गई शक्तियों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना' शब्दों के साथ आरंभ होती है। इससे यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) कोई नई शक्ति प्रदत्त नहीं करती, अपितु यह धारा 3 की उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त की गई साधारण शक्तियों का, उन विषयों को निःशेष किए बिना जिनके संबंध में ऐसी शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है, मात्र दृष्टांत स्वरूप है।¹

41. **डी. के. त्रिवेदी एंड संस** बनाम **गुजरात राज्य**¹ वाले मामले में इस प्रश्न पर पुनः विचार किया गया था। इस न्यायालय को खान और खनिज (विनियमन और विकास) अधिनियम, 1957 की धारा 15 के अधीन राज्य सरकारों की उन्हें प्रदान किए गए खानों और खनिजों के पट्टों के संबंध में अनिवार्य भाटक (डैड रेंट) और स्वामिस्व प्रभारित करने और अनिवार्य भाटक तथा स्वामिस्व की दरों में बढ़ोतरी करने हेतु उन्हें समर्थ बनाने के लिए धारा 15 के अधीन नियम बनाने की शक्ति की सांविधानिकता को दी गई चुनौती पर विचार करना था। इस दलील को नामंजूर करते हुए कि अधिनियम, 1957 में राज्य सरकार द्वारा धारा 15(1) के अधीन शक्ति का प्रयोग करने के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत अंतर्विष्ट नहीं है, इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :-

“30. इस दलील में कोई सार नहीं है कि धारा 15(1) के

¹ [1986] 3 उम. नि. प. 709 = 1986 (सप्ली.) एस. सी. सी. 20.

अधीन राज्य सरकारों की नियम बनाने की शक्ति का प्रयोग करने के लिए 1957 के अधिनियम में कोई दिशानिर्देश उपबंधित नहीं हैं। जैसाकि पहले कहा गया है, धारा 15(1) धारा 13(1) की समविषयक है। तथापि, धारा 13 में उपधारा (2) अंतर्विष्ट है जिसमें वे विशिष्ट बातें उपवर्णित हैं जिनकी बाबत केन्द्रीय सरकार 'विशिष्टतः, और पूर्वोक्त शक्ति की व्यापकता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना' नियम बना सकेगी, अर्थात् उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त नियम बनाने की शक्ति। यह सुस्थिर है कि जहां कोई कानून पूर्व प्रदत्त साधारण शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना विशिष्ट शक्तियां प्रदान करता, तो वे विशिष्ट शक्तियां साधारण शक्ति की मात्र दृष्टांत रूप में होती हैं और किसी भी रूप में साधारण शक्ति को निर्बन्धित नहीं करती। डिफेंस ऑफ इंडिया (अमेंडमेंट) ऐक्ट, 1940 की धारा 2 द्वारा यथासंशोधित डिफेंस ऑफ इंडिया ऐक्ट, 1939 की धारा 2 केन्द्रीय सरकार को ऐसे नियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है जो उसे 'ब्रिटिश भारत की रक्षा, लोक सुरक्षा, लोक व्यवस्था बनाए रखने या युद्ध के दक्ष संचालन, या सामुदायिक जीवन के लिए आवश्यक पूर्ति और सेवाएं बनाए रखने के लिए आवश्यक या समीचीन' प्रतीत हों। धारा 2 की उपधारा (2) केन्द्रीय सरकार को उक्त उपधारा में उपवर्णित विभिन्न बातों के लिए उपबंध करते हुए नियमों द्वारा उपबंध करने या ऐसे आदेश करने के लिए किसी प्राधिकारी को सशक्त बनाने की शक्ति प्रदान करती थी। यह शक्ति उक्त उपधारा (2) के इन प्रारंभिक शब्दों 'उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना' द्वारा अभिव्यक्त की गई थी। किंग एम्परर **बनाम** शिवनाथ बनर्जी और अन्य [(1944-45) 72 आई. ए. 241] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल की जुडिशियल कमेटी ने यह अभिनिर्धारित किया –

‘न्यायालय की राय में, उपधारा (2) में दिया गया कृत्य मात्र एक दृष्टांत है ; नियम बनाने की शक्ति उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त की गई है, और वे नियम जिनके प्रति उपधारा (2) के आरंभिक वाक्य में निर्देश किया गया है ऐसे 'नियम' हैं जो उपधारा (1) द्वारा प्राधिकृत और इसके अधीन बनाए गए हैं ; उपधारा (2) के उपबंध उपधारा (1) के निर्बंधनकारी नहीं हैं, जैसाकि वास्तव में, 'उपधारा (1) के द्वारा प्रदत्त शक्तियों की

व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना' शब्दों द्वारा अभिव्यक्त रूप से कथित है ।'

विधि की इस उपर्युक्त प्रतिपादना का इस न्यायालय द्वारा ओम प्रकाश और अन्य **बनाम** भारत संघ और अन्य, [(1970) 3 एस. सी. सी. 942] तथा शिव कृपाल सिंह **बनाम** श्री वी. वी. गिरि, [(1970) 2 एस. सी. सी. 567] वाले मामलों में अनुमोदन और इसे स्वीकार किया गया है ।

(बल देने के लिए रेखांकित किया गया है)

31. तथापि, धारा 13 की उपधारा (2) जैसा कोई उपबंध धारा 15 में नहीं पाया जाता है । हमारी राय में, इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता । धारा 13 की उपधारा (2) में जो कुछ उपवर्णित है वह उन बातों का निदर्शक है जिनकी बाबत केन्द्रीय सरकार 'खनिजों की बाबत पूर्वोक्षण अनुज्ञप्तियां और खनन पट्टे अनुदत्त किए जाने को विनियमित करने के लिए और तत्संबद्ध प्रयोजनार्थ' नियम बना सकती है । धारा 13 की उपधारा (2) के प्रारंभिक खंड, अर्थात् 'विशिष्टतः, और पूर्वोक्त शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना' से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस उपधारा में दिए गए विषय पहले ही उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त साधारण शक्ति में सम्मिलित कर लिए गए हैं और उन्हें विशिष्टता प्रदान करने तथा उनकी ओर ध्यान केंद्रित करने के लिए भी उन्हें सूचीबद्ध किया गया है । अतः, वे विशिष्ट पदार्थ जिनकी बाबत केन्द्रीय सरकार धारा 13 की उपधारा (2) के अधीन नियम बना सकती है, वही पदार्थ है जिनकी बाबत धारा 15 की उपधारा (1) के अधीन राज्य सरकारें 'गौण खनिजों की बाबत खदान पट्टे, खनन पट्टे या अन्य खनिज रियायतें अनुदत्त किए जाने को विनियमित करने और तत्संबद्ध प्रयोजनार्थ नियम बना सकती है ।' जब धारा 14 यह निदेश देती है कि 'धारा 4 से 13 के उपबंध (सम्मिलित रूप में) गौण खनिजों की बाबत खदान पट्टों, खनन पट्टों या अन्य खनिज रियायतों को लागू नहीं होंगे, तो इसका आशय यह है कि इन धाराओं में अंतर्विष्ट बातें, जहां तक उनका संबंध गौण खनिजों से हैं, केन्द्रीय सरकार द्वारा नियंत्रित न की जाकर संबंधित राज्य सरकार द्वारा केन्द्रीय सरकार के प्रत्यायुक्त के रूप में नियम बनाने की शक्ति का प्रयोग करते हुए की जाएंगी ।' धारा 4 से 12 ऐसी धाराओं का ऐसा ग्रुप है, जिसका शीर्षक 'पूर्वोक्षण

और खनन संक्रियाओं के उपक्रम पर साधारण निर्बंधन' है । गौण खनिजों को इन धाराओं के लागू होने के अपवर्जन का अर्थ है कि ये निर्बंधन गौण खनिजों को लागू नहीं होंगे किन्तु इन निर्बंधनों को विहित करना राज्य सरकारों पर छोड़ दिया गया है, जैसा भी वे धारा 15(1) के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा उपयुक्त समझें । गौण खनिजों के अलावा अन्य खनिजों से गौण खनिजों को भिन्न मानने के कारण स्पष्ट हैं । जैसाकि धारा 3 के खंड (क) में दी गई गौण खनिजों की परिभाषा से पता चलता है, वे ऐसे खनिज हैं जिनका प्रयोग अधिकतर स्थानीय क्षेत्रों में और स्थानीय प्रयोजनार्थ किया जाता है जबकि गौण खनिजों के अलावा अन्य खनिज वे हैं जो राष्ट्रीय स्तर पर औद्योगिक विकास और देश की अर्थ-व्यवस्था के लिए आवश्यक होते हैं । इसी कारण गौण खनिजों से संबंधित बातें संसद् ने राज्य सरकारों पर छोड़ दी हैं और गौण खनिजों के अलावा अन्य खनिजों से संबंधित बातें केन्द्रीय सरकार के लिए आरक्षित कर दी गई हैं । धारा 13, 14 और 15 उन धाराओं के ग्रुप में आती हैं जिनका शीर्षक 'पूर्वक्षण अनुज्ञप्तियां और खनन पट्टे अनुदत्त किए जाने को विनियमित करने के लिए नियम है' । इन तीनों धाराओं का वाचन एक साथ किया जाना चाहिए । यह उपबंधित करने में कि धारा 13 गौण खनिजों की बाबत खदान पट्टों, खनन पट्टों या अन्य खनिज रियायतों को लागू नहीं होगी, जो किया जाना था वह गौण खनिजों की बाबत नियम बनाने की शक्ति केन्द्रीय सरकार से लेकर धारा 15(1) के अधीन राज्य सरकारों को प्रदान करना था । तथापि, धारा 13 और 15 के अधीन शक्ति का क्षेत्र एक जैसा ही है, केवल एक अंतर है और वह यह कि एक ओर तो केन्द्रीय सरकार गौण खनिजों के अलावा अन्य खनिजों की बाबत शक्ति का प्रयोग करती है और दूसरी ओर राज्य सरकारें गौण खनिजों की बाबत शक्ति का प्रयोग करती है । धारा 13 की उपधारा (2) में, जो धारा 13(1) द्वारा प्रदत्त साधारण शक्ति की निदर्शी है, धारा 15(1) के अधीन नियम विरचित करने के लिए राज्य सरकारों के लिए पर्याप्त दिशा निर्देश अंतर्विष्ट हैं, और इसी प्रकार, राज्य सरकारों के सामने भी धारा 15(1) के अधीन अपने नियम विरचित करते समय वे निर्बंधन और अन्य बातें हैं जो धारा 4 से 12 में उपबंधित हैं ।'

(बल देने के लिए रेखांकित किया गया है)

42. अकेडमी आफ न्यूट्रिशन इम्प्रूवमेंट बनाम भारत संघ¹ वाले मामले (पैरा 66) में इसी प्रतिपादना को दोहराया गया है। उस पैरा के अंतिम भाग में की गई मताभिव्यक्तियों से यह इंगित होता है कि नियम बनाने वाले प्राधिकरण को प्रदत्त की गई शक्ति उसे अधिनियम की परिधि से परे नियम बनाने के लिए हकदार नहीं बनाती है, उस मताभिव्यक्ति का इन मामलों में कोई सरोकार नहीं है क्योंकि हमारे समक्ष यह दलील नहीं दी गई है कि धारा 36 के अधीन बनाए गए विनियम अधिनियम के उपबंधों के अधिकारातीत हैं।

43. यहां यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि धारा 11(1)(ख)(iv) में विनिर्दिष्ट रूप से इन खंडों में विनिर्दिष्ट कृत्यों का निर्वहन करने के लिए विनियम बनाना परिकल्पित है। धारा 11(2), जिसमें भारतीय तार अधिनियम, 1885 की तुलना में सर्वोपरि खंड अंतर्विष्ट है, में यह अधिकथित किया गया है कि प्राधिकरण धारा 11(3) में विनिर्दिष्ट परिसीमा के अधीन रहते हुए, समय-समय पर, आदेश द्वारा, उन दरों को अधिसूचित कर सकेगा, जिन पर भारत और भारत के बाहर दूर-संचार सेवाएं अधिनियम के अधीन उपलब्ध कराई जाएंगी। धारा 12(1) के अधीन, प्राधिकरण आदेश जारी करने और किसी सेवा प्रदाता से उसके कार्यकलाप से संबंधित ऐसी जानकारी या स्पष्टीकरण मांगने या किसी सेवा प्रदाता के कार्यकलाप से संबंधित कोई जांच करने के लिए एक या अधिक व्यक्तियों के नियुक्त करने और किसी सेवा प्रदाता की लेखा बहियों या अन्य दस्तावेजों का निरीक्षण करने का निदेश देने के लिए सशक्त है। अधिनियम की धारा 12(4) और 13, जिनका प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् काउंसिलों द्वारा अपनी इस दलील के समर्थन में अवलंब लिया गया है कि प्राधिकरण इन दोनों धाराओं में वर्णित विषयों पर विनियम नहीं बना सकता है, ये केवल समर्थकारी उपबंध हैं। यह बात धारा 12(4) में प्रयुक्त 'की शक्ति होगी' और धारा 13 में प्रयुक्त 'प्राधिकरण ... दे सकेगा' अभिव्यक्तियों से सुस्पष्ट होती है। धारा 12(4) के निबंधनों के अनुसार, प्राधिकरण सेवा प्रदाताओं को ऐसे निदेश दे सकता है, जो वह सेवा प्रदाताओं द्वारा उचित कृत्यकरण के लिए आवश्यक समझे। धारा 13 में यह अधिकथित है कि प्राधिकरण, धारा 11 की उपधारा (1) के

¹ (2011) 8 एस. सी. सी. 274.

अधीन अपने कृत्यों के निर्वहन के लिए, सेवा प्रदाताओं को ऐसे निदेश दे सकेगा, जो वह आवश्यक समझे। इस उपबंध की व्याप्ति को परन्तुक द्वारा सीमित किया गया है, जिसमें यह अधिकथित है कि धारा 12(4) या धारा 13 के अधीन कोई निदेश धारा 11(1)(ख) में विनिर्दिष्ट विषयों के सिवाय जारी नहीं किया जाएगा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्राधिकरण अपने कृत्यों के निर्वहन के लिए सेवा प्रदाताओं को निदेश जारी कर सकता है। अधिनियम में अनुज्ञप्तिधारियों और प्रयोक्ताओं जैसे बहुत-सारे प्रतियोगियों के बारे में उल्लेख किया गया है, जो “सेवा प्रदाता” शब्द की परिधि के अंतर्गत नहीं आते हैं। यदि प्राधिकरण को अनुज्ञप्तिधारियों या प्रयोक्ताओं के संबंध में अपने कृत्यों का निर्वहन करना है, तो उसे धारा 12(4) और 13 से भिन्न उपबंधों के अधीन शक्तियों का प्रयोग करना पड़ेगा। इसलिए, प्राधिकरण धारा 36(1) के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए ऐसे विनियम बना सकता है, जो उसे सेवा प्रदाताओं पर लागू होने वाले साधारण स्वरूप के निदेश जारी करने के लिए सशक्त करे और यह नहीं कहा जा सकता है कि प्राधिकरण ने अधिनियम की धारा 36(1) के अधीन विनियम बनाकर धारा 12(4) और 13 द्वारा अधिकृत विषयक्षेत्र का अधिक्रमण किया है।

44. मामले के इस पहलू से अलग होने से पूर्व, हम धारा 33 और 37 की अवेक्षा कर सकते हैं। धारा 33 की सुस्पष्ट भाषा को पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि प्राधिकरण, साधारण या विशेष आदेश द्वारा, प्राधिकरण के किसी सदस्य या अधिकारी या किसी अन्य व्यक्ति को अधिनियम के अधीन अपनी ऐसी शक्तियों और कृत्यों का, अध्याय 4 के अधीन विवाद का निपटारा करने और धारा 36 के अधीन विनियम बनाने की शक्ति को छोड़कर, प्रत्यायोजन कर सकेगा। इससे यह अभिप्रेत है कि धारा 36 के अधीन विनियम बनाने की शक्ति अप्रत्यायोजनीय है। धारा 36 को धारा 33 की परिधि से अपवर्जित करने का कारण सुस्पष्ट है। धारा 36 के अधीन शक्ति प्रशासनिक शक्ति के विपरीत विधायी शक्ति है। धारा 37 के आधार पर, अधिनियम के अधीन बनाए गए विनियमों को ऐसे नियमों के समान रखा गया है जो धारा 35 के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाए जा सकते हैं और नियमों और विनियमों को, अधीनस्थ विधायनों की प्रकृति का होने के कारण, संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखा जाएगा, जो इन्हें अकृत या संशोधित कर सकते हैं। इस प्रकार, प्राधिकरण द्वारा बनाए गए विनियमों को केवल संसद् द्वारा निष्प्रभावी या संशोधित किया जा सकता है, किसी अन्य निकाय द्वारा नहीं।

45. उपरोक्त चर्चा और पूर्वगामी पैराओं में निर्दिष्ट किए गए निर्णयों में अधिकथित की गई प्रतिपादनाओं को दृष्टिगत करते हुए, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि प्राधिकरण में धारा 36(1) के अधीन निहित विनियम बनाने की शक्ति व्यापक और विस्तृत है। इस शक्ति का प्रयोग केवल अधिनियम के उपबंधों और इसकी धारा 35 के अधीन बनाए गए नियमों के अध्याधीन है। धारा 36(1) के अधीन प्राधिकरण द्वारा शक्ति का प्रयोग करने पर कोई अन्य निर्बंधन नहीं है। यह शक्ति धारा 36(2) या धारा 11, 12 और 13 द्वारा नियंत्रित या परिसीमित नहीं है।

46. न्यायालय द्वारा विरचित किए गए प्रश्न का दूसरा अति महत्वपूर्ण पहलू यह है कि क्या दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण को प्राधिकरण द्वारा बनाए गए विनियमों को दी गई चुनौती को ग्रहण करने की अधिकारिता है या नहीं।

47. विद्वान् महा-सालिसिटर ने संविधान के अनुच्छेद 323-क और 323-ख, प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 14 और एल. चन्द्र कुमार बनाम भारत संघ¹ वाले मामले में बृहत्तर न्यायपीठ के निर्णय को निर्दिष्ट किया और यह दलील दी कि जब भी संसद् ने नियमित न्यायालयों के बजाय किसी न्यायनिर्णायक निकाय पर न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदत्त करनी चाही, तो उसने 1985 के अधिनियम की धारा 14 जैसे उपबंध अधिनियमित किए। उन्होंने यह दलील दी कि अधिनियम की धारा 14, जो 1985 के अधिनियम के अधिनियमन के 12 वर्षों के पश्चात् अधिनियमित की गई थी और वर्ष 2000 में संशोधित की गई थी, की भाषा दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण को अधीनस्थ विधायन का न्यायिक पुनर्विलोकन करने के लिए सशक्त नहीं करती है। विद्वान् महा-सालिसिटर ने आगे यह दलील दी कि धारा 14(ख) में प्रयुक्त निदेश, विनिश्चय या आदेश शब्दों को अधिनियम की धारा 36 के अधीन बनाए गए विनियमों, जो कि अधीनस्थ विधायन की प्रकृति के हैं, को दी गई चुनौती को ग्रहण करने के लिए दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण को सशक्त करने हेतु अत्यधिक विस्तृत अर्थ नहीं दिया जाना चाहिए। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि यदि इन शब्दों का निर्वचन धारा 36 के अधीन बनाए गए विनियमों को सम्मिलित करने के लिए किया जाता है, तो ऐसा ही निर्वचन धारा 35 के अधीन बनाए गए नियमों के संबंध में भी लागू

¹ (1997) 3 एस. सी. सी. 261.

होगा क्योंकि वे भी अधीनस्थ विधायन की प्रकृति के हैं। विद्वान् महा-सालिसिटर ने यह दलील दी की यदि धारा 35 के अधीन बनाए गए नियमों और धारा 36 के अधीन बनाए गए विनियमों को दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के समक्ष चुनौती दी जाती है और उनकी विधिमान्यता की गैर-न्यायिक सदस्यों से बनी पीठ द्वारा परीक्षा की जाती है तो यह अत्यंत विचित्र स्थिति हो जाएगी। विद्वान् महा-सालिसिटर ने पीटीसी इंडिया लिमिटेड बनाम केन्द्रीय विद्युत विनियामक आयोग¹ वाले मामले में सांविधानिक न्यायपीठ के निर्णय का अवलंब लिया और यह दलील दी कि हालांकि निर्णय के पैरा 94 में न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त किया है कि निष्कर्षों के सारांश और निर्देश के उत्तर का अर्थान्वयन अधिनियम सहित किसी अन्य अधिनियमिति के अधीन गठित विनियामक आयोग के मुकाबले अपील अधिकरणों पर लागू होने वाले विधि के एक साधारण सिद्धांत के रूप में नहीं किया जाएगा, इसलिए इस निर्णय का विनिश्चयाधार वर्तमान मामले में स्पष्ट रूप से लागू होता है। विद्वान् महा-सालिसिटर ने यह दलील दी कि विद्युत अधिनियम, 2003 (जिसे संक्षेप में “2003 का अधिनियम कहा गया है”) की धारा 79 में अधिनियम की धारा 11(1)(ख)(vii) और (viii) जैसे खंड अंतर्विष्ट नहीं हैं और अधिनियम की धारा 36(2) जैसा उपबंध 2003 के अधिनियम में अंतर्विष्ट नहीं है और इसके अतिरिक्त 2003 के अधिनियम की धारा 111 में धारा 14 में प्रयुक्त निदेश, विनिश्चय या आदेश शब्दों के विपरीत केवल “आदेश” शब्द अंतर्विष्ट है, किंतु ये फर्क अमहत्वपूर्ण हैं और सांविधानिक न्यायपीठ के निर्णय के विनिश्चयाधार की अनदेखी करने का कोई न्यायौचित्य नहीं है। श्री नरीमन ने यह दलील दी कि दूसरे पक्ष द्वारा 2003 के विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 79, 11 और 178(यड़) की भाषा के प्रति निर्देश करके जो विभेद किए जाने की ईप्सा की गई है, वह भ्रामक है क्योंकि धारा 121, जिसमें “आदेश”, “अनुदेश” या “निदेश” शब्द प्रयोग किए गए हैं, की अवेक्षा करने के पश्चात् सांविधानिक न्यायपीठ ने स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया कि उक्त धारा अपील अधिकरण को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदत्त नहीं करती है।

48. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिल सर्वश्री ए. एस. चंडिओक, सी. एस. वैद्यनाथन, डा. ए. एम. सिंघवी, रामजी श्रीनिवासन और मुकुल रोहतगी ने एल. चन्द्र कुमार बनाम भारत संघ (उपरोक्त) वाले मामले के निर्णय का

¹ [2010] 3 उम. नि. प. 264 = (2010) 4 एस. सी. सी. 603.

अवलंब लिया और यह दलील दी कि संसद् या राज्य विधान-मंडल के किसी अधिनियम के अधीन गठित प्रत्येक अधिकरण नियमों और विनियमों के संबंध में न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करने के लिए सशक्त है। उन्होंने **सेलुलर आपरेटर्स एसोसिएशन आफ इंडिया** बनाम **भारत संघ**¹, **होटल एंड रेस्टोरेंट एसोसिएशन** बनाम **स्टार इंडिया (प्राइवेट) लिमिटेड**², **भारत संघ** बनाम **टाटा टेली सर्विसेज़ (महाराष्ट्र) लिमिटेड**³ और **भारत संघ** बनाम **एसोसिएशन आफ यूनिफेड टेलीकॉम सर्विसेज़ प्रोवाइडर्स आफ इंडिया**⁴ वाले मामलों में इस न्यायालय के निर्णयों का भी अवलंब लिया और यह दलील दी कि धारा 36 के अधीन बनाए गए विनियमों की विधिमाम्यता की दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण द्वारा परीक्षा की जा सकती है और समुचित मामलों में ये अभिखंडित किए जा सकते हैं। उन्होंने आगे यह दलील दी कि धारा 36 के अधीन बनाए गए विनियम आवश्यक रूप से प्राधिकरण द्वारा लिए गए विनिश्चय की प्रकृति के हैं और उन्हें धारा 14(ख) के अधीन सदैव चुनौती दी जा सकती है। विद्वान् ज्येष्ठ काउंसिलों ने **भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण** बनाम **बीपीएल मोबाइल सेलुलर लिमिटेड**⁵ वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा तारीख 28 मार्च, 2006 को पारित किए गए आदेश को भी निर्दिष्ट किया और यह दलील दी कि इस न्यायालय के समक्ष यह आधार लेने के पश्चात् कि “निदेश” के अंतर्गत “विनियमन” भी आता है, प्राधिकरण इस न्यायालय के समक्ष विनियमों की चुनौती देने वाली धारा 14(ख) के अधीन अपील की संघार्यता के मुद्दे पर अलग स्थिति धारित करने से विबंधित है। डा. सिंघवी और श्री रोहतगी ने यह दलील दी कि वर्ष 2000 में किए गए संशोधनों का एक उद्देश्य विवादों और अपीलों के त्वरित न्यायनिर्णयन के लिए एक विशिष्ट निकाय का सृजन करना था और यदि धारा 36 के अधीन बनाए गए विनियमों को धारा 14(ख) की परिधि से अपवर्जित किया जाता है तो वह उद्देश्य पूरी तरह से विफल हो जाएगा। उन्होंने **मद्रास बार एसोसिएशन** बनाम **भारत संघ**⁶ वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का भी अवलंब लिया और यह दलील दी कि जब एक

¹ (2003) 3 एस. सी. सी. 186.

² (2006) 13 एस. सी. सी. 753.

³ (2007) 7 एस. सी. सी. 517.

⁴ (2011) 10 एस. सी. सी. 543.

⁵ तारीख 28 मार्च 2006 को विनिश्चित 2003 की सिविल अपील सं. 6473.

⁶ (2010) 11 एस. सी. सी. 1.

बार संसद् ने दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदत्त की है, तो अधिनियम की धारा 14(ख) का निर्बंधनात्मक निर्वचन करके इसकी परिधि को कम करने का कोई विधिमान्य आधार नहीं है ।

49. संबंधित दलीलों पर विचार करने से पूर्व, हम फिर से धारा 14 (असंशोधित और संशोधित) पर विचार करते हैं । प्राधिकरण असंशोधित धारा 14(1) के अधीन सेवा प्रदाताओं के बीच और सेवा प्रदाताओं और उपभोक्ताओं के किसी समूह के बीच विवादों का विनिश्चय कर सकता था । धारा 14(2) (असंशोधित) के निबंधनों के अनुसार, प्राधिकरण के अध्यक्ष द्वारा गठित न्यायपीठ उन शक्तियों और प्राधिकार का प्रयोग कर सकती है, जो सेवा प्रदाताओं के बीच तकनीकी संगतता और अंतःसंबंध, विभिन्न सेवा प्रदाताओं के बीच आमदनी बांटने की व्यवस्था, दूर-संचार सेवाओं की गुणवत्ता और उपभोक्ताओं के हित से संबंधित विषय के बारे में पूर्व में सिविल न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य थे । तथापि, धारा 14(2) के खंड (क), (ख) और (ग) में विनिर्दिष्ट विवादों का विनिश्चय अध्यक्ष द्वारा गठित न्यायपीठ द्वारा नहीं किया जा सकता था ।

50. चूंकि असंशोधित अधिनियम की धारा 14 के अधीन विवादों का निपटारा करने के लिए उपबंधित प्रक्रिया समाधानप्रद नहीं थी, इसलिए संसद् ने इस धारा को प्रतिस्थापित किया और दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के रूप में ज्ञात एक स्वतंत्र न्यायनिर्णायक निकाय की स्थापना को सुकर बनाया । संशोधित धारा 14 का खंड (क) दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण को किसी अनुज्ञापक और अनुज्ञापिधारी के बीच, दो या अधिक सेवा प्रदाताओं के बीच और किसी सेवा प्रदाता और उपभोक्ताओं के समूह के बीच किसी विवाद को न्यायनिर्णीत करने की शक्ति प्रदत्त करता है । दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण की न्यायनिर्णायक शक्ति के तीन अपवाद हैं जो ऐसे विषयों से संबंधित हैं, जो एकाधिकार और अवरोधक व्यापारिक व्यवहार आयोग की अधिकारिता के अधीन हैं, किसी व्यक्तिगत उपभोक्ता की शिकायत, जो उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के अधीन स्थापित उपभोक्ता पीठ के समक्ष चलाई जा सकती है, और तार अधिनियम, 1885 की धारा 7ख में निर्दिष्ट प्राधिकारी और किसी अन्य व्यक्ति के बीच विवाद है । धारा 14 के खंड (ख) (संशोधित) के निबंधनों के अनुसार, दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण प्राधिकरण के किसी निदेश,

विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध अपील की सुनवाई और उसका निपटारा करने के लिए सशक्त है। धारा 14क(1) में धारा 14(क) में निर्दिष्ट किसी विवाद को न्यायनिर्णीत करने के लिए दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण को आवेदन करने का उपबंध किया गया है। धारा 14क(2) और (3) में प्राधिकरण द्वारा किए गए किसी निदेश, विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध अपील फाइल करने का उपबंध किया गया है और परिसीमा की अवधि भी विहित की गई है। धारा 14 की उपधारा (4) से (7) कुल मिलाकर प्रक्रियात्मक हैं। धारा 14ख अपील अधिकरण के गठन के संबंध में है। धारा 14ग में अध्यक्ष और सदस्यों की अर्हताएं विहित की गई हैं। धारा 14ग में दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के अध्यक्ष और अन्य प्रत्येक सदस्य की पदावधि का उल्लेख है। धारा 14ड में सेवा के निबंधन और शर्तों का उल्लेख है। धारा 14च में रिक्तियों को भरने का उपबंध किया गया है। धारा 14छ दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के अध्यक्ष और अन्य सदस्यों को हटाए जाने और त्यागपत्र से संबंधित है। धारा 14ज दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के कर्मचारिवृंद के संबंध में हैं। धारा 14झ दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के कार्य का विभिन्न न्यायपीठों के बीच वितरण और उनके रोस्टर का उपबंध करने के लिए अध्यक्ष को सशक्त करती है। धारा 14ञ मामलों का एक न्यायपीठ से अन्य न्यायपीठ को अंतरण करने के लिए अध्यक्ष को सशक्त करती है। धारा 14ट यह अधिकथित करती है कि किसी आवेदन या अपील का विनिश्चय बहुमत द्वारा होना चाहिए। धारा 14ठ में दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के अध्यक्ष और सदस्यों आदि को लोक सेवक होना माना गया है। धारा 14ड और 14ढ में लंबित मामलों और अपीलों के अंतरण का उपबंध है।

51. वर्ष 2000 के संशोधन का मुख्य उद्देश्य प्राधिकरण के न्यायनिर्णायक कृत्यों को इसके प्रशासनिक और विधायी कृत्यों से अलग करना और इस आलोचना को समाप्त करना था कि जो विनियम बनाने और निदेश जारी करने या आदेश पारित करने के लिए सशक्त है, उसे ही उनकी वैधता का विनिश्चय करने की शक्ति दी गई है। धारा 14(ख) में प्रयुक्त “निदेश” शब्द धारा 12(4) और 12(1) के प्रति निर्देश्य है। “आदेश” शब्द धारा 11(2) और 12(1) के प्रति निर्देश्य है। “विनिश्चय” शब्द धारा 14क(2) और (7) में प्रयुक्त किया गया है। यही कारण है कि धारा 14ड

के परन्तुक में वर्ष 2000 के संशोधन से पूर्व अध्याय 4 के अधीन न्यायनिर्णीत किए जाने वाले विवादों की बाबत प्राधिकरण के सीमित न्यायनिर्णायक कृत्यों को परिकल्पित किया गया है। धारा 14ड में यह परन्तुक वर्ष 2000 के संशोधन के प्रवर्तन में आने और दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण की स्थापना होने के बीच के अंतर से बचने के लिए अंतःस्थापित किया गया था।

52. धारा 14(ख) में प्रयुक्त किसी शब्द का विवादों के न्यायनिर्णयन से कोई लेना-देना नहीं है। वर्ष 2000 के संशोधन के पूर्व, आवेदन धारा 15 के अधीन फाइल किए जाने अपेक्षित थे, और इस धारा में ऐसे आवेदनों का विनिश्चय करने की विस्तृत प्रक्रिया भी अंतर्विष्ट थी। जबकि धारा 15 की उपधारा (2) में “आदेश” शब्द प्रयुक्त किया गया है, इसकी उपधारा (3) और (4) में “विनिश्चय” शब्द प्रयुक्त किया गया है। उपधारा (5) के निबंधनों के अनुसार, प्राधिकरण के आदेशों और निदेशों को सेवा प्रदाताओं, सरकार और संबद्ध अन्य सभी व्यक्तियों पर आबद्धकर समझे जाते थे। धारा 18 प्राधिकरण के किसी विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध अपील करने का उपबंध करती थी। ऐसी अपील उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल की जा सकती थी। वर्ष 2000 में किए गए संशोधन का आशय प्राधिकरण की मूल अधिकारिता को दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण में निहित करना है और इस आशय को धारा 14(क) द्वारा प्राप्त किया गया। उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य अपीली अधिकारिता भी धारा 14(ख) के द्वारा दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण में निहित है किंतु इसके अंतर्गत प्राधिकरण द्वारा किए गए विनिश्चय नहीं आते हैं। धारा 14ड में उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित सभी अपीलों दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण को अंतरित करने का उपबंध किया गया है और उपधारा (2) के खंड (ख) के निबंधनों के अनुसार, दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण से ऐसी अपीलों का उस प्रक्रम से, जिस पर वह ऐसे अंतरण से पूर्व थी या किसी अन्य पूर्वतर प्रक्रम से या नए सिरे से, जो भी वह उचित समझे, कार्रवाई करना अपेक्षित था। चूंकि उच्च न्यायालय के पास अपील की सुनवाई करते समय अधीनस्थ विधायन के पुनर्विलोकन की शक्ति नहीं थी, इसलिए अन्तरिती न्यायनिर्णायक अधिकरण अर्थात् दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण धारा 14(ख) के अधीन उस शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है।

53. सेलुलर आपरेटर्स एसोसिएशन आफ इंडिया बनाम भारत संघ

(उपरोक्त) वाले मामले में मुख्य न्यायमूर्ति पटनायक, जिन्होंने तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ का निर्णय दिया, धारा 14 को निर्दिष्ट करते हुए यह मत व्यक्त किया :-

“यह कहना पर्याप्त है कि धारा 14 को अंतर्विष्ट करते हुए अध्याय 4 वर्ष 2002 के संशोधन द्वारा अंतःस्थापित किया गया था तथा उद्देश्यों और कारणों के कथन से ही यह उपदर्शित होता है कि विनिवेशकों के विश्वास में वृद्धि करने और पब्लिक और प्राइवेट आपरेटरों के बीच समान अवसर सृजित करने के लिए भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 1997 में उपयुक्त संशोधन किया गया और संशोधन के द्वारा अनुज्ञापक और अनुज्ञप्तिधारी के बीच, दो या अधिक सेवा प्रदाताओं के बीच, सेवा प्रदाता और उपभोक्ताओं के समूह के बीच विवादों को न्यायनिर्णीत और प्राधिकरण के किसी निदेश, विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध अपील की सुनवाई और निपटारा करने के लिए एक अधिकरण गठित किया गया जिसे दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण कहा जाता है । पूर्वोक्त उपबंध अत्यंत आवश्यक था क्योंकि अनुज्ञापक के संगठन अर्थात् महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड और भारत संचार निगम लिमिटेड भी सेवा प्रदाता थे । जिस उद्देश्य को लेकर एक स्वतंत्र अधिकरण गठित किया गया, उस अधिकरण की शक्ति को उस शक्ति को प्रदत्त करने वाली भाषा से न्यायनिर्णीत किया जाना चाहिए और इसे इस आधार पर निर्बंधित करना उचित नहीं होगा कि विनिश्चय, जो अधिकरण के समक्ष चुनौती की विषयवस्तु है, एक विशेषज्ञ निकाय का विनिश्चय था । यह निस्संदेह सत्य है, जिस पर हम बाद में विचार करेंगे, कि भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण की संरचना तथा अप्रैल 2001 में जीओटी-आईटी का गठन बड़ी संख्या में प्रख्यात निष्पक्ष विशेषज्ञों से मिलकर हुआ है और प्रधानमंत्री उनके परामर्श पर ही अंतिम रूप से विनिश्चय करते हैं, किंतु यह बात किसी भी प्रकार से धारा 14 के अधीन अपील अधिकरण की शक्ति को निर्बंधित नहीं करती है, यद्यपि अधिमूल्यन के मामले में अधिकरण ऐसे विशेषज्ञ परामर्श और सिफारिशों को सम्यक् अधिमान देगा । उस विशेष प्रयोजन और उद्देश्य, जिसके लिए अपील अधिकरण गठित किया गया, को ध्यान में रखते हुए और अध्याय 4 में अंतर्विष्ट विभिन्न उपबंधों, विशिष्ट रूप से उस उपबंध,

जो सिविल न्यायालय की अधिकारिता को ऐसे किसी विषय जिसकी बाबत अपील अधिकरण अधिनियम द्वारा या इसके अधीन अवधारित करने के लिए सशक्त है, बाहर करने से संबंधित है, जैसाकि धारा 15 में अंतर्विष्ट है, की परीक्षा करने के पश्चात् हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई संकोच नहीं है कि अपील अधिकरण की शक्ति, जैसा कि स्वयं कानून में उपदर्शित किया गया है, अति व्यापक है और इस न्यायालय के अपीलीय शक्ति या मूल शक्ति का प्रयोग करने वाले किसी न्यायालय की शक्ति पर विचार करने वाले विनिश्चय अधिनियम के अधीन अपील अधिकरण की अधिकारिता को सीमित करने के लिए लागू नहीं होंगे। चूंकि अधिकरण अनुज्ञापक और अनुज्ञप्तिधारी या दो या अधिक सेवा प्रदाताओं के बीच या सेवा प्रदाता और उपभोक्ताओं के समूह के बीच किसी विवाद का न्यायनिर्णयन करने के लिए मूल प्राधिकरण है और चूंकि अधिकरण को भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण के निदेश, विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध अपीलों की सुनवाई और निपटारा करना है, हमारे लिए न्यायाधीश द्वारा निर्मित विधि, जिसे पहले ही निर्दिष्ट किया गया है और विद्वान् अटर्नी जनरल द्वारा अवलंब लिया गया है, के अधीन किसी न्यायालय के स्वतः पूर्ण निर्बंधनों और परिसीमाओं को महत्व देना कठिन है।”

(बल देने के लिए रेखांकित किया गया है)

54. **भारत संघ बनाम टाटा टेली सर्विसेज़ (महाराष्ट्र) लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अधिनियम की स्कीम को निर्दिष्ट किया और यह मत व्यक्त किया :-

“अधिनियम के उपबंधों के सिंहावलोकन से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि किसी अनुज्ञप्तिधारी या अनुज्ञापक के बीच विवाद, दो या अधिक ऐसे सेवा प्रदाताओं के बीच विवाद जो सरकार के अंतर्गत आते हैं और इसमें अनुज्ञप्तिधारी भी सम्मिलित है तथा सेवा प्रदाता और उपभोक्ताओं के समूह के बीच विवाद दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण की परिधि के अंतर्गत आते हैं। अधिनियम की प्रस्तावना और अधिनियम को अधिनियमित करने के उद्देश्यों और कारणों को ध्यान में रखकर अधिनियम के सुसंगत उपबंधों को पढ़ने मात्र से यह उपदर्शित होता है कि संबंधित पक्षकारों के बीच विवाद, जिनमें महत्वपूर्ण तकनीकी पहलू अंतर्वलित होंगे, इस

प्रयोजन के लिए गठित एक विशिष्ट अधिकरण द्वारा अवधारित किए जाएंगे। ऐसे किसी विषय की बाबत किसी वाद या कार्यवाही को ग्रहण करने के लिए सिविल न्यायालय की अधिकारिता को भी अपसारित किया गया है, जिसके लिए दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण अधिनियम द्वारा या इसके अधीन अवधारित करने के लिए सशक्त है। सिविल न्यायालय को अधिनियम द्वारा या इसके अधीन प्रदत्त किसी शक्ति के अनुसरण में की गई या की जाने वाली कार्रवाई की बाबत व्यादेश अनुदत्त करने की भी अधिकारिता नहीं है। दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण के गठन से स्वतः यह उपदर्शित होता है कि इसका अध्यक्ष अधिक्रम में उच्चतम स्तर का न्यायिक अधिकारी, उच्चतम न्यायालय का कोई आसीन या सेवानिवृत्त न्यायाधीश या उच्च न्यायालय का कोई आसीन या सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश होता है और इसके सदस्य सरकार के सचिव काडर के होने चाहिए, स्पष्ट रूप से जो प्रशासन और प्रशासनिक मामलों में भली-भांति अनुभवी हों।

यह अधिनियम राष्ट्रीय दूर-संचार नीति, 1994 को ध्यान में रखते हुए देश में मुहैया कराई गई दूर-संचार सेवाओं से उद्भूत होने वाले सभी विवादों का निपटारा करने के लिए आशयित एक पूर्ण संहिता दिखाई पड़ता है। उद्देश्यों और कारणों द्वारा भी इस बात पर बल दिया गया है।

सामान्यतः, जब कोई विशिष्ट अधिकरण उसके अधीन आने वाले विशिष्ट प्रकृति के गंभीर तकनीकी पहलुओं से सम्मिलित विवादों का निपटारा करने के लिए गठित किया जाता है, तो उसे प्रदत्त अधिकारिता का अर्थ ऐसी रीति में लगाने का प्रयास करना चाहिए जिससे कि अधिनियम द्वारा प्राप्त किया जाने वाला उद्देश्य निष्फल न हो सके। इस संदर्भ में, अधिनियम की धारा 15 और 27 में अंतर्विष्ट सिविल न्यायालय की अधिकारिता को हटा देने की बात को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। अधिनियम के अधीन विचारणीय विषय पर्याप्त तकनीकी प्रकृति के हैं, जिन्हें निपटाने के लिए सामान्यतः सिविल न्यायालय, कम-से-कम अभी हाल में, साधन-विहीन हैं और दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण की अधिकारिता को परिभाषित करते समय इस पहलू को अनदेखा नहीं किया जा सकता है।”

55. ऊपरवर्णित निर्णयों में इस न्यायालय ने दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण की अधिकारिता की परिधि पर बल दिया है, किंतु इस प्रश्न पर विचार नहीं किया है कि क्या 'निदेश', 'विनिश्चय' या 'आदेश' शब्दों के अंतर्गत अधिनियम की धारा 36 के अधीन बनाए गए विनियम भी आते हैं या नहीं और इन्हें दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण की अपीली अधिकारिता के अधीन लाया जा सकता है या नहीं। इसलिए उन निर्णयों का यह अभिनिर्धारित करने के लिए अवलंब नहीं लिया जा सकता है कि अधिनियम की धारा 14(ख) के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण धारा 36 के अधीन बनाए गए विनियमों के विरुद्ध अपील की सुनवाई कर सकता है।

56. अब हम 2003 की सिविल अपील सं. 6743 – भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण बनाम बीपीएल मोबाइल सेलुलर लिमिटेड (उपरोक्त) वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के निर्णय पर विचार कर सकते हैं, जो कि स्पष्ट रूप से प्रभेदनीय है। उस मामले के तथ्य ये थे कि मई, 2001 में प्रत्यर्थी सं. 1 ने अपने उपभोक्ताओं को एक प्रोन्नत योजना के रूप में एक स्कीम की प्रस्थापना की। हजारों ग्राहकों ने इस प्रस्थापना को स्वीकार किया। अक्टूबर, 2001 में यह स्कीम बंद हो गई। एक ग्राहक ने प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा स्कीम को एकपक्षीय बंद कर देने को चुनौती देते हुए एक जनहित याचिका फाइल की। उच्च न्यायालय ने एक आदेश पारित किया और अपीलार्थी को इस संबंध में एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निदेश दिया। कोई रिपोर्ट प्रस्तुत न किए जाने पर, उच्च न्यायालय ने तारीख 24 सितम्बर, 2002 के एक पश्चात्वर्ती आदेश द्वारा अपीलार्थी को निदेश दिया कि पक्षकारों को सुनने के पश्चात् कार्रवाई की जाए और आदेश की तारीख से तीन माह की अवधि के भीतर अनुपालन रिपोर्ट प्रस्तुत की जाए। इस निदेश के अनुसरण में अपीलार्थी ने तारीख 23 दिसम्बर, 2002 को, अन्य बातों के साथ-साथ, यह अभिनिर्धारित करते हुए एक आदेश पारित किया कि प्रत्यर्थी सं. 1 ने दूर-संचार टैरिफ आदेश, 1999 के उपबंधों का अतिक्रमण किया है, क्योंकि वह अपीलार्थी को स्कीम के आरंभ करने या बाद में इसे वापस लेने के बारे में सूचित करने में असफल रहा है। यह पाया गया कि प्रत्यर्थी सं. 1 की कार्रवाई से ग्राहकों के हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा था। अंततः, अपीलार्थी ने यह राय व्यक्त की कि अतिक्रमण गंभीर प्रकृति का है और इस पर अधिनियम की धारा

34 के साथ पठित धारा 29 के अनुसार विचार किया जाना चाहिए । उसके पश्चात् अधिकारिता वाले मजिस्ट्रेट के पास एक परिवाद दाखिल किया गया । प्रत्यर्थी सं. 1 ने तारीख 23 दिसम्बर, 2002 के आदेश के विरुद्ध अपील फाइल की । दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण ने अपील मंजूर की और यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी द्वारा जारी किए गए आदेश के किसी अतिक्रमण के लिए धारा 29 का अवलंब नहीं लिया जा सकता था । इस न्यायालय ने धारा 29 और 34 को निर्दिष्ट किया और निम्नलिखित प्रश्न विरचित किए :-

“क्या ‘निदेश’ शब्द के अंतर्गत दूर-संचार टैरिफ आदेश, 1999 (जिसे इसमें इसके पश्चात् ‘आदेश’ कहा गया है) भी आएगा, जिससे कि उसका कोई अतिक्रमण धारा 34 के साथ पठित धारा 29 के अधीन दंडनीय होगा ?”

इसके पश्चात् न्यायालय ने धारा 11(1)(ग), 11(2), 12(4) और 13 के प्रति निर्देश किया और यह मत व्यक्त किया :-

“वर्ष 1999 में जो आदेश पारित किया गया है, वास्तव में उसमें भारत सरकार द्वारा प्रत्यर्थी को प्रदान की गई अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों के अनुपालन की ईप्सा की गई है और उसे सुनिश्चित किया गया है ।

इन सभी उपबंधों के पठन से हमें यह प्रतीत होता है कि ‘निदेश’ शब्द के अंतर्गत आदेशों/विनियमों को लाने के लिए इसे व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया गया है, जो की जाने वाली कार्रवाई को निदिष्ट करता है । हमें धारा 29 को केवल निदेशों तक सीमित करना होगा जो कि निदेशात्मक आदेश या/निदेशात्मक विनियम नहीं हैं । इसका अर्थ यह है कि ऐसे आदेशों/विनियमों के अतिक्रमण से किसी प्रकार का कोई शास्तिक परिणाम नहीं होगा । परिणामतः, अधिनियम की संपूर्ण स्कीम अव्यवहार्य बन जाएगी । इसके अतिरिक्त, धारा 11(1)(ख), जिसके संबंध में निदेश जारी किए जा सकते हैं, को भी स्वतः व्यापक तौर पर विरचित किया गया है । वास्तव में, प्रश्नगत आदेश धारा 11(1)(ख) (i) से संबंधित है, जैसा कि हमने पहले ही उल्लेख किया है । यह हो सकता है कि धारा 29 से अपराध सृजित होता हो और इसलिए कड़ाई पूर्वक अर्थान्वयन किया जाना आवश्यक है । तथापि, यह सिद्धांत इस सिद्धांत के प्रतिकूल नहीं होगा कि

किसी शब्द का निर्वचन संदर्भानुसार किया जाना चाहिए । हमें धारा 29 में 'निदेश' शब्द के अर्थ को अभिनिश्चित करना है । 'निदेश' शब्द निदेशात्मक आदेशों और विनियमों को शब्द विचार के विषय के रूप में अपनी परिधि के अंतर्गत ले सकता है । इसके अतिरिक्त, अधिनियम के संदर्भ में ऐसा कोई कारण नहीं है कि निदेशों से अंतर्विष्ट आदेशों और विनियमों को 'निदेश' शब्द में सम्मिलित न किया जाए । यह भी एक तार्किक स्वाभाविक परिणाम होगा क्योंकि विनियमों और आदेशों से उनके साथ एक अधिक गंभीर आज्ञा जुड़ी हुई है ।”

57. आदेश के उपरोक्त उद्धृत भाग से यह स्पष्ट है कि न्यायपीठ, जिसने मामले का विनिश्चय किया, ने यह महसूस किया कि दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से किसी शास्तिक परिणाम के बिना आदेशों का असंयत अतिक्रमण होगा और अधिनियम की संपूर्ण स्कीम अव्यवहार्य बन जाएगी । अधिनियम की धारा 29 में प्रयुक्त 'निदेश' शब्द का निर्वचन उस मामले की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि के संदर्भ में और न्यायालय की इस आशंका से कि धारा 29 अन्यथा अव्यवहार्य बन जाएगी, आदेशों और विनियमों को सम्मिलित करते हुए किया गया था किंतु इस निर्वचन को विधि की यह प्रतिपादना अधिकथित करने के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है कि धारा 14(ख) में प्रयुक्त 'निदेश', 'विनिश्चय' और 'आदेश' शब्दों के अंतर्गत धारा 36 के अधीन बनाए गए विनियम, जो अधीनस्थ विधायन की प्रकृति के हैं, भी आएंगे ।

58. पीटीसी इंडिया लिमिटेड बनाम केन्द्रीय विद्युत विनियामक आयोग (उपरोक्त) वाले मामले में सांविधानिक न्यायपीठ ने निम्नलिखित प्रश्न विरचित किए थे :-

“(i) क्या विद्युत अधिनियम, 2003 (संक्षेप में 2003 का अधिनियम) के अधीन गठित अपील अधिकरण को धारा 111 के अधीन 2003 के अधिनियम की धारा 178 के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए विरचित केन्द्रीय विद्युत विनियामक आयोग (व्यापार अंतर का नियतन) विनियम, 2006 की विधिमान्यता की परीक्षा करने की अधिकारिता है ?

(ii) क्या संसद् द्वारा 2003 के अधिनियम की धारा 121 के अधीन विद्युत अपील अधिकरण को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति

प्रदत्त की गई है ?

(iii) क्या 2003 के अधिनियम की धारा 178 के अधीन व्यापार अंतर की कैपिंग करने संबंधी विनियम बनाकर केन्द्रीय विद्युत विनियामक आयोग (केन्द्रीय आयोग) द्वारा ऐसा किया जा सकता है ?”

59. सांविधानिक न्यायपीठ ने विद्युत अधिनियम, 2003 के उपबंधों, जिनमें धारा 73, 75, 79, 86, 111, 177, 178, 179, 181 और 182 सम्मिलित हैं, के प्रति विस्तारपूर्वक निर्देश किया और यह मत व्यक्त किया :-

“47. उपर्युक्त दलीलों के संबंध में, एक प्रश्न जो अवधारणार्थ उद्भूत होता है वह यह है कि क्या 2003 के अधिनियम के अधीन व्यापार अंतर नियतन (जिसके अंतर्गत कैपिंग भी है) केवल धारा 79(1)(ज) के अधीन आदेश द्वारा ही किया जा सकता है न कि धारा 178 के अधीन विनियमों द्वारा ? अपीलार्थी (अपीलार्थियों) के अनुसार, ऐसा केवल धारा 79(1)(ज) के अधीन आदेश द्वारा ही किया जा सकता है, विशिष्टतया जब धारा 178(2) के अधीन विनियम बनाने की शक्ति 2003 के उक्त अधिनियम के अधीन प्रत्येक प्राधिकरण को सौंपे गए कृत्यों से संबंधित है ।

48. प्रत्येक मामले में इस बात का अवधारण करने के लिए उस कानूनी संदर्भ की परीक्षा करने की जरूरत होती है कि किसी मामले की सुनवाई कर रहे न्यायालय या अधिकरण को अधीनस्थ विधान या उसके अधीन के प्रशासनिक कार्य की विधिमान्यता संबंधी दलीलों पर आधारित प्रतिवाद के संबंध में विनिर्णय करने की अधिकारिता है । ऐसी भी स्थितियां हो सकती हैं जिनमें कि संसद् ऐसे प्रशासनिक कार्यों की, जिन पर जनसाधारण अवलंब ले सकता है, विधिसम्मतता के बारे में निश्चितता का संवर्धन करने के हित में ऐसे आक्षेपों को प्रवारित करने के लिए विधान बना सकती है ।

49. 2003 के अधिनियम की विभिन्न धाराओं का उपर्युक्त विश्लेषण किए जाने पर हमारा यह निष्कर्ष है कि विनिश्चय करने और विनियम बनाने संबंधी कृत्य दोनों ही केन्द्रीय विद्युत विनियामक आयोग को सौंपे गए हैं । विधि न केवल विधान के माध्यम से अस्तित्व में आती है बल्कि विनियम और मुकदमेबाजी के माध्यम से

भी अस्तित्व में आती है। तीनों ही स्रोतों से अस्तित्व में आई विधि आबद्धकर होती है। प्रोफेसर वेड के अनुसार विधायी और प्रशासनिक कृत्यों के मध्य हमारे विनियामक कृत्य होते हैं। कानूनी लिखत जैसेकि नियम अथवा विनियम प्रत्यायोजित विधान की शक्ति के प्रयोग से बनते हैं जो कि विधायिका द्वारा विधि का अधिनियमन किए जाने के सदृश्य प्रशासनिक प्रक्रिया का एक भाग है जबकि एक न्यायिककल्प आदेश न्यायनिर्णयन से जो कि न्यायालय के न्यायिक विनिश्चय के सदृश्य प्रशासनिक प्रक्रिया का भाग है, उद्भूत होता है।

50. उपर्युक्त कसौटी को लागू करते हुए, कीमत नियतन की कार्यवाही वस्तुतः तब तक विधायी प्रकृति की है, जब तक कि किसी विशिष्ट कानून के निबंधनों द्वारा उसे न्यायिककल्प न बनाया गया हो जैसेकि 2003 के अधिनियम की धारा 62 के अधीन टैरिफ नियतन को धारा 111 के अधीन अपीलनीय बनाया गया है, जबकि धारा 61 केंद्रीय विद्युत विनियामक आयोग द्वारा विनियम बनाए जाने संबंधी एक समर्थकारी उपबंध है। यदि “टैरिफ” को विषयवस्तु के रूप में लें तो यह पता चलता है कि 2003 के अधिनियम के भाग 7 के अधीन टैरिफ का वास्तविक अवधारण/नियतन धारा 62 के अधीन समुचित आयोग द्वारा किया जाता है जबकि धारा 61 में ऐसे विनियम बनाए जाने संबंधी उपबंध हैं जिनमें ऐसी व्यापक प्रतिपादनाएं अंतर्विष्ट हैं जिनके अनुसार संबंधित आयोग को टैरिफ नियत करना होता है। यह मूलभूत स्कीम समान रूप से “व्यापार अंतर” विषयवस्तु को भी एक भिन्न कानूनी संदर्भ में लागू होती है जिसे कि इसमें इसके पश्चात् विवेचना द्वारा प्रदर्शित किया जाएगा।”

न्यायपीठ ने इसके पश्चात् **नरिन्दर चंद हेम राज बनाम उप राज्यपाल, हिमाचल प्रदेश¹** और **इंडियन एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स (मुम्बई) प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ²** वाले मामलों को निर्दिष्ट किया और यह अभिनिर्धारित किया :-

“53. ऊपरवर्णित कसौटियों को 2003 के अधिनियम की स्कीम के प्रति लागू करते हुए, हमारा यह निष्कर्ष है कि अधिनियम के अधीन केंद्रीय आयोग विनिश्चय करने और साथ ही विनियम बनाने

¹ [1972] 1 उम. नि. प. 434 = (1971) 2 एस. सी. सी. 747.

² [1985] 1 उम. नि. प. 615 = (1985) 1 एस. सी. सी. 641.

संबंधी प्राधिकरण है। धारा 79 के अधीन केंद्रीय आयोग के कृत्यों को मोटे तौर पर दो प्रवर्गों में अर्थात् आज्ञापक कृत्यों और सलाहकारी कृत्यों के रूप में वर्णित किया गया है। टैरिफ विनियमन, अनुज्ञप्ति देना (जिसके अंतर्गत अंतरराज्यिक व्यापार अनुज्ञप्ति देना भी है), उत्पादन कंपनियों अथवा पारेषण अनुज्ञप्तिधारियों को अंतर्वलित करने वाले विवादों का न्यायनिर्णयन “आज्ञापक कृत्य” शीर्षक के अंतर्गत आता है जबकि केंद्रीय सरकार को राष्ट्रीय विद्युत नीति और टैरिफ नीति बनाए जाने के संबंध में सलाह देना “सलाहकारी कृत्य” शीर्षक के अंतर्गत आता है। इस अर्थ में, केंद्रीय आयोग विनिश्चय करने वाला प्राधिकारी है। धारा 79(1) के अधीन ऐसे विनिश्चय किए जाने का कार्य केंद्रीय आयोग द्वारा धारा 178 के अधीन विनियम बनाए जाने पर निर्भर नहीं करता है। अतः, धारा 79 में केंद्रीय आयोग के प्रगणित कृत्य धारा 178 के अधीन केंद्रीय आयोग के कृत्यों से पृथक् और सुभिन्न हैं। पूर्ववर्ती प्रशासनिक/न्यायनिर्णयन संबंधी कृत्य है जबकि पश्चात्वर्ती विधायी कृत्य है।

54. जैसाकि ऊपर कथन किया गया है, 2003 का अधिनियम विद्युत विनियामक आयोग अधिनियम, 1998 के अधीन परिकल्पित नीति को अग्रसर करने के लिए अधिनियमित किया गया है, जैसाकि इसमें एक ऐसा स्वतंत्र और पारदर्शी विनियामक आयोग स्थापित करना आज्ञापक बनाया गया है जिसके बहुत व्यापक उत्तरदायित्व और उद्देश्य हों, जिसके अंतर्गत अन्य बातों के साथ-साथ विद्युत उपभोक्ताओं की संरक्षा भी है। तदनुसार, केंद्रीय आयोग की अधिनियम की धारा 76(1) के अधीन उसे प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने तथा उसे समनुदेशित कृत्यों का निर्वहन करने के लिए स्थापना की गई है। धारा 76(1) और धारा 79(1) का परिशीलन करने पर यह पता चलता है कि केंद्रीय आयोग धारा 79(1) में प्रगणित कृत्यों का जैसेकि उत्पादन कंपनियों के टैरिफ को विनियमित करना, विद्युत के अंतरराज्यिक पारेषण को विनियमित करना, विद्युत के अंतरराज्यिक पारेषण के लिए टैरिफ अवधारित करना, अनुज्ञप्ति जारी करना, विवादों का न्यायनिर्णयन करना, फीस उद्गृहीत करना, ग्रीड कोड विनिर्दिष्ट करना, विद्युत के अंतरराज्यिक व्यापार में, यदि आवश्यक समझा जाए, व्यापार अंतर को नियत करना आदि कृत्यों का निर्वहन करने के लिए उपाय करने/कदम उठाने के लिए सशक्त

है। वे उपाय, जिन्हें करने के लिए केंद्रीय आयोग सशक्त है, धारा 178 के अधीन के विनियमों के, जहां कहीं ऐसे विनियम लागू होते हों, अनुरूप होने चाहिए। अतः धारा 79(1) के अधीन उपाय धारा 178 के अधीन विनियमों के अनुरूप होने चाहिए।

55. विनियमित करना एक ऐसी कार्यवाही है जो विनियम बनाने से भिन्न है। तथापि, धारा 178 के अधीन कोई विनियम बनाना केंद्रीय आयोग के लिए धारा 79(1) के अधीन कोई कदम उठाने/उपाय करने के लिए कोई पूर्व शर्त नहीं है। जैसाकि कथन किया गया है, यदि कोई विनियम विद्यमान है, तो धारा 79(1) के अधीन उपाय धारा 178 के अधीन वर्णित विनियम के अनुरूप होना चाहिए। यह सिद्धांत इस न्यायालय के विभिन्न ऐसे निर्णयों से उद्भूत हुए हैं, जिनकी हमारे द्वारा इसमें इसके पश्चात् विवेचना की गई है। उदाहरणार्थ, धारा 79(1)(छ) के अधीन केंद्रीय आयोग से 2003 के अधिनियम के प्रयोजनार्थ फीस उद्गृहीत करना अपेक्षित है। विनियामक फीस अधिरोपित करने संबंधी आदेश धारा 178 के अधीन कोई विनियम न होने पर भी पारित किया जा सकता है। यदि उद्ग्रहण अयुक्तियुक्त है तो उसे धारा 111 के अधीन अपनी अधिकरण के समक्ष चुनौती दी जा सकती है क्योंकि वह उद्ग्रहण आदेश/विनिश्चय करने की प्रक्रिया द्वारा अधिरोपित किया गया है। धारा 178 के अधीन कोई विनियम बनाना धारा 79(1)(छ) के अधीन कोई विनियामक फीस उद्गृहीत करने संबंधी आदेश पारित किए जाने के लिए कोई पूर्व शर्त नहीं है। तथापि, यदि उस बारे में धारा 178 के अधीन ऐसा कोई विनियम है तो धारा 79(1)(छ) के अधीन फीस उद्गृहीत किए जाने संबंधी आदेश ऐसे विनियम के अनुरूप होना चाहिए।¹

सांविधानिक न्यायपीठ ने इसके पश्चात् इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 121 को अपील अधिकरण को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदत्त करने वाली धारा के रूप में पढ़ा जा सकता है। न्यायपीठ ने **रमण एंड रमण लिमिटेड बनाम मद्रास राज्य**¹ वाले मामले को निर्दिष्ट किया और यह मत व्यक्त किया :-

“84. उपर्युक्त निर्णय में अधिकथित कसौटियों को वर्तमान मामले के संबंध में लागू करते हुए हमारा यह मत है कि धारा 121 में वर्णित

¹ ए. आई. आर. 1959 एस. सी. 694.

“आदेश” “अनुदेश” या “निदेश” शब्दों से अधिकरण को न्यायिक पुनर्विलोकन की कोई शक्ति प्रदत्त नहीं होती। उन मामलों की कोई सर्वांगीण सूची अधिकथित करना संभव नहीं है जिनमें समुचित आयोग कानूनी कृत्यों का पालन करने में असफल रहा है। तथापि, दृष्टांत स्वरूप हम यह कह सकते हैं कि धारा 79(1)(ज) के अधीन केंद्रीय विद्युत विनियामक आयोग से यह अपेक्षित है कि वह ग्रिड मानकों को ध्यान में रखते हुए ग्रिड कोड विनिर्दिष्ट करे। धारा 79 भाग 10 के अंतर्गत आती है। धारा 79 केंद्रीय विद्युत विनियामक आयोग के कृत्यों के बारे में है। “ग्रिड” शब्द को धारा 2(32) में परिभाषित किया गया है। जिससे अंतःसहयोजित पारेषण लाइनें, उप-केंद्र और उत्पादन संयंत्रों की उच्च वोल्ट वाली आधार प्रणाली अभिप्रेत है। मूलतः ग्रिड एक नेटवर्क होता है। धारा 2(33) में “ग्रिड कोड” को परिभाषित किया गया है। ग्रिड कोड से धारा 79(1)(ज) के अधीन केंद्रीय विद्युत विनियामक आयोग द्वारा विनिर्दिष्ट कोड अभिप्रेत है। धारा 2(34) में ग्रिड मानक को परिभाषित किया गया है। ग्रिड मानक से प्राधिकरण द्वारा धारा 73(घ) के अधीन विनिर्दिष्ट मानक अभिप्रेत है। ग्रिड कोड नियमों का एक समुच्चय है जो नेटवर्क के अनुरक्षण को शासित करता है। यह अनुरक्षण महत्वपूर्ण है। गर्मी के मासों में ग्रिड ट्रिप करते रहते हैं। ग्रिड मानकों के अनुसार ग्रिड कोड न बनाए जाने की दशा में अधिकरण केंद्रीय विद्युत विनियामक आयोग को धारा 73 के अधीन प्राधिकरण द्वारा विहित ग्रिड मानकों को ध्यान में रखते हुए ग्रिड कोड विनिर्दिष्ट करने संबंधी अपने कानूनी कृत्यों का पालन करने का निदेश दे सकता है। ऐसे कई दृष्टांत दिए जा सकते हैं जिनका कि उल्लेख हम करना नहीं चाहते। यह कहना ही पर्याप्त है कि 2003 के अधिनियम का हमारे द्वारा किए गए विश्लेषण को ध्यान में रखते हुए 2003 के अधिनियम की धारा 121 में वर्णित आदेश, अनुदेश या निदेश शब्दों से धारा 121 के अधीन अधिकरण को न्यायिक पुनर्विलोकन करने की कोई शक्ति प्रदान नहीं की जा सकती। अतः वह 2006 के आक्षेपित विनियमों की विधिमान्यता पर विचार नहीं कर सकता जैसाकि आक्षेपित निर्णय में ठीक ही अभिनिर्धारित किया गया है।”

60. सांविधानिक न्यायपीठ के निष्कर्षों का सार पैरा 92 में अंतर्विष्ट है जिसे नीचे उद्धृत किया जाता है :-

“92. (i) 2003 के अधिनियम के अधीन धारा 178, जो केंद्रीय आयोग द्वारा अधीनस्थ विधान के प्राधिकार के अधीन विनियम बनाए जाने के संबंध में है, विनियामक शक्तियों और कृत्यों के अनुक्रम में, 2003 के अधिनियम की धारा 79(1) से, जिसके अंतर्गत केंद्रीय सरकार के विनिर्दिष्ट क्षेत्रों में आदेशों (विनिश्चयों) द्वारा निर्वहन किए जाने वाले विनियामक कृत्य प्रगणित हैं, व्यापक है।

(ii) धारा 178 के अधीन विनियम, विनियामक ढांचे के भागरूप, विनियमित इकाइयों के बीच विद्यमान संविदाओं में मध्यक्षेप करता है और अभिभावी भी है क्योंकि इसके अधीन विनियमित इकाइयों को उक्त विनियमों के साथ अपनी विद्यमान और भावी संविदाओं को श्रेणीबद्ध करने की कानूनी बाध्यता अधिरोपित की गई है।

(iii) धारा 178 के अधीन कोई विनियम प्रत्यायोजित विधान के प्राधिकार के अधीन बनाया जाता है और परिणामतः इसकी विधिमान्यता को केवल न्यायालयों के समक्ष न्यायिक पुनर्विलोकन की कार्यवाहियों में ही परखा जा सकता है न कि उक्त अधिनियम की धारा 111 के अधीन विद्युत अपील अधिकरण के समक्ष अपील फाइल करके।

(iv) 2003 के अधिनियम की धारा 121 के अधीन अपील अधिकरण को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदान नहीं की गई है। धारा 121 में “आदेश”, “अनुदेश” या “निदेश” शब्द विद्युत अपील अधिकरण को न्यायिक पुनर्विलोकन की कोई शक्ति प्रदान नहीं करते। इस निर्णय में हम इंग्लिश नजीरों का विश्लेषण नहीं करना चाहते क्योंकि हमारा उन नजीरों को देखते हुए यह निष्कर्ष है कि इंग्लैंड में कुछ मामलों में न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति अधिनियम के अधीन गठित अधिकरणों को अभिव्यक्त रूप से प्रदत्त की गई है। 2003 के वर्तमान अधिनियम में, धारा 178 के अधीन बनाए गए विनियमों की विधिमान्यता का न्यायिक पुनर्विलोकन करने की शक्ति विद्युत अपील अधिकरण को प्रदत्त नहीं की गई है।

(v) यदि धारा 178 के अधीन बनाए गए किसी विनियम के निर्वचन के संबंध में न्यायनिर्णयन में कोई विवाद उद्भूत होता है तो उसकी अपील विनिश्चित रूप से धारा 111 के अधीन अपील अधिकरण को होगी, किंतु अपील अधिकरण को कोई भी अपील धारा 178 के अधीन बनाए गए किसी विनियम की विधिमान्यता के संबंध में नहीं होगी।

(vi) “व्यापक बनाम प्रगणन” के सिद्धांत को लागू करते हुए केंद्रीय आयोग धारा 178(2)(यड) के साथ पठित धारा 178(1) के अधीन किसी अवशिष्ट मद पर कोई विनियम बनाने के लिए स्वतंत्र होगा। तदनुसार, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि केंद्रीय विद्युत विनियामक आयोग धारा 178 के अधीन तारीख 23 जनवरी, 2006 की अधिसूचना द्वारा प्रत्यायोजित विधान के प्राधिकार के अधीन व्यापार अंतर को कैप करने के लिए स्वतंत्र था।

(vii) धारा 121, विद्युत (संशोधन) अधिनियम, 2003 (2003 का अधिनियम संख्यांक 57) द्वारा यथासंशोधित, तारीख 27 जनवरी, 2004 से प्रवृत्त हुई थी। परिणामतः, जो यह दलील दी गई है कि उक्त धारा अभी तक प्रवर्तन में नहीं लाई गई है, उसमें कोई सार नहीं है।”

61. हमारे मत में, सांविधानिक न्यायपीठ ने यद्यपि निर्णय के पैरा 94 में यह स्पष्ट किया है कि इस निर्णय से अधिनियम के अधीन आने वाले मामले शासित नहीं होंगे, उस निर्णय का विनिश्चयाधार स्पष्ट रूप से इन मामलों में लागू होता है।

62. एल. चन्द्र कुमार बनाम भारत संघ (उपरोक्त) और भारत संघ बनाम मद्रास बार एसोसिएशन¹ वाले मामले स्पष्ट रूप से प्रभेदनीय हैं। एल. चन्द्र कुमार (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने 1985 के अधिनियम की धारा 14 की परिधि पर विचार किया था, जो निम्नलिखित है :-

“14. केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण की अधिकारिता, शक्तियां और प्राधिकार – (1) इस अधिनियम में जैसा अभिव्यक्त रूप में उपबंधित है उसके सिवाय, केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण, नियत दिन से ही, ऐसी सभी अधिकारिता, शक्तियों और प्राधिकार का प्रयोग जो उस तारीख से ठीक पहले उच्चतम न्यायालय के सिवाय सभी न्यायालयों द्वारा निम्नलिखित के संबंध में प्रयोक्तव्य है, अर्थात् :-

(क) किसी अखिल भारतीय सेवा में या संघ की किसी सिविल सेवा में या संघ के अधीन किसी सिविल पद पर या रक्षा से संबंधित या रक्षा सेवाओं में के किसी पद पर, जो दोनों

¹ (2010) 11 एस. सी. सी. 1.

दशाओं में किसी सिविलियन द्वारा भरा गया कोई पद है, भर्ती और भर्ती से संबंधित विषय ;

(ख) सेवा संबंधी ऐसे सभी विषय, जो –

(i) किसी अखिल भारतीय सेवा के किसी सदस्य ; या

(ii) किसी ऐसे व्यक्ति से, जो किसी अखिल भारतीय सेवा का सदस्य या खंड (ग) में निर्दिष्ट कोई व्यक्ति नहीं है, जो संघ की किसी सिविल सेवा में या संघ के अधीन किसी सिविल पद पर नियुक्त किया जाता है ; या

(iii) किसी ऐसे सिविलियन से, जो किसी अखिल भारतीय सेवा का सदस्य या खंड (ग) में निर्दिष्ट व्यक्ति नहीं है, जो रक्षा सेवाओं में के या रक्षा से संबंधित किसी पद पर नियुक्त किया जाता है ;

सम्बद्ध है और जो संघ के अलावा किसी राज्य के अथवा भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अथवा सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण के अधीन किसी निगम या सोसाइटी के कार्यकलापों से संबंधित ऐसे सदस्य, व्यक्ति या सिविलियन की सेवा के संबंध में है ।

(ग) सेवा संबंधी ऐसे सभी विषय, जो संघ के कार्यकलापों से संबंधित सेवा के संबंध में किसी ऐसे व्यक्ति से सम्बद्ध है जो खंड (ख) के उपखंड (ii) या उपखंड (iii) में निर्दिष्ट किसी सेवा में या पद पर नियुक्त किया जाता है और जो ऐसा व्यक्ति है जिसकी सेवाएं ऐसी नियुक्ति के लिए किसी राज्य सरकार या किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी या किसी निगम या सोसाइटी या अन्य निकाय द्वारा केन्द्रीय सरकार को सौंप दी गई हैं ।

स्पष्टीकरण – शंकाओं को दूर करने के लिए यह घोषित किया जाता है कि इस उपधारा में, 'संघ' के प्रति निर्देशों का यह अर्थ लगाया जाएगा कि उनके अंतर्गत, संघ राज्यक्षेत्र के प्रति निर्देश भी है ।

(2) केन्द्रीय सरकार, अधिसूचना द्वारा, उपधारा (3) के उपबंध,

भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारियों को और सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण के अधीन निगमों या सोसाइटियों को, जो राज्य सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण के अधीन कोई स्थानीय या अन्य प्राधिकारी या निगम या सोसाइटी नहीं है, ऐसी तारीख से लागू कर सकेगी जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाए :

परन्तु यदि केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम में परिकल्पित स्कीम के संक्रमण को सुकर बनाने के प्रयोजन के लिए ऐसा करना समीचीन समझती है तो स्थानीय या अन्य प्राधिकारियों या निगमों या सोसाइटियों के भिन्न-भिन्न वर्गों के या किसी वर्ग के अधीन भिन्न-भिन्न प्रवर्गों के संबंध में इस उपधारा के अधीन भिन्न-भिन्न तारीखें इस प्रकार विनिर्दिष्ट की जा सकेंगी ।

(3) इस अधिनियम में जैसा अभिव्यक्त रूप से उपबंधित है उसके सिवाय, केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण ऐसी तारीख से ही जिससे इस उपधारा के उपबंध किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी या निगम या सोसाइटी को लागू होते हैं, ऐसी सभी अधिकारिता, शक्तियों और प्राधिकार का भी प्रयोग करेगा जो उस तारीख से ठीक पहले उच्चतम न्यायालय के सिवाय सभी न्यायालयों द्वारा निम्नलिखित के संबंध में प्रयोक्तव्य हैं, अर्थात् –

(क) ऐसे स्थानीय या अन्य प्राधिकारी या निगम या सोसाइटी के कार्यकलापों से संबंधित किसी सेवा या पद पर भर्ती और भर्ती से संबंधित विषय ;

(ख) सेवा संबंधी ऐसे सभी विषय, जो उपधारा (1) के खंड (क) या खंड (ख) में निर्दिष्ट किसी व्यक्ति से भिन्न ऐसे किसी व्यक्ति के संबंध में है जो ऐसे स्थानीय या अन्य प्राधिकारी या निगम या सोसाइटी के कार्यकलापों से संबंधित किसी सेवा में या पद पर नियुक्त किया जाता है और जो ऐसे कार्यकलापों से संबंधित ऐसे व्यक्ति के संबंध में है ।”

बृहत्तर न्यायपीठ ने इसके पश्चात् उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में निहित न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति की परिधि पर विचार किया और यह मत व्यक्त किया :-

“अन्य पहलुओं पर जाने से पूर्व, हम इन अधिकरणों की

अधिकारिता संबंधी शक्तियों पर अपने निष्कर्षों का सार दे सकते हैं। अधिकरण ऐसे मामलों की सुनवाई करने के लिए सक्षम हैं, जहां कानूनी उपबंधों की शक्तिमत्ता को प्रश्नगत किया जाता है। तथापि, इस कर्तव्य का निर्वहन करने में वे उच्च न्यायालयों या उच्चतम न्यायालय के प्रतिस्थापन के रूप में कार्य नहीं कर सकते हैं, जिन्हें हमारे संवैधानिक तानेबाने के अधीन विनिर्दिष्ट रूप से ऐसी बाध्यता सौंपी गई है। उनके कार्य इस संबंध में केवल अनुपूरक हैं और अधिकरणों के सभी विनिश्चय संबंधित उच्च न्यायालयों की खंड न्यायपीठ के समक्ष संवीक्षा के अधीन होंगे। अधिकरणों को भी परिणामतः अधीनस्थ विधायनों और नियमों की शक्तिमत्ता का परीक्षण करने की शक्ति होगी। तथापि, अधिकरणों की यह शक्ति एक महत्वपूर्ण अपवाद के अधीन होगी। अधिकरण अपने मूल कानूनों की शक्तिमत्ता संबंधी किसी प्रश्न को इस स्थिर सिद्धांत का अनुसरण करते हुए ग्रहण नहीं करेंगे कि कोई अधिकरण, जो किसी अधिनियम की सृष्टि है, उसी अधिनियम को असंवैधानिक होना घोषित नहीं कर सकता। ऐसे मामलों में सीधे केवल संबंधित उच्च न्यायालय में समावेदन किया जा सकता है। इन अधिकरणों के ऐसे मामलों में दिए गए अन्य सभी विनिश्चय कि वे अपने मूल कानूनों के आधार पर विनिर्दिष्ट रूप से न्यायनिर्णयन करने के लिए सशक्त हैं, भी उनके अपने-अपने उच्च न्यायालयों की खंड न्यायपीठ के समक्ष संवीक्षा के अधीन होंगे। तथापि, हम यह भी कहना चाहेंगे कि अधिकरण विधि के ऐसे क्षेत्रों की बाबत जिनके लिए वे गठित किए गए हैं, प्रथम अधिकारिता वाले एकमात्र न्यायालयों के रूप में कार्य करते रहेंगे। इससे, हमारे कहने का यह अर्थ है कि मुकदमा लड़ने वाले संबंधित अधिकरण की अधिकारिता को अनदेखा करके सीधे उच्च न्यायालयों में समावेदन करने के लिए स्वतंत्र नहीं होंगे, यहां तक कि उन मामलों में भी जिनमें उन्हें कानूनी विधानों (सिवाय वहां के, जैसा कि उल्लेख किया गया है, जहां ऐसे विधान को चुनौती दी गई है जो विशिष्ट अधिकरण का सृजन करता है) की शक्तिमत्ता को चुनौती देनी हो।¹

63. **भारत संघ बनाम मद्रास बार एसोसिएशन** (उपरोक्त) और **गुजरात राज्य बनाम गुजरात राजस्व अधिकरण बार एसोसिएशन**¹ वाले

¹ (2012) 10 एस. सी. सी. 353 = 2012 (10) स्केल 285.

मामलों में इस न्यायालय ने एल. चन्द्र कुमार (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित किए गए सिद्धांतों को लागू किया और विवादों को सुलझाने के लिए सृजित अधिकरणों के महत्व को दोहराया, किंतु इन निर्णयों का भी हमारे समक्ष विरचित प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए कोई सरोकार नहीं है ।

64. परिणामतः, न्यायालय द्वारा विरचित किए गए प्रश्न का उत्तर निम्नलिखित निबंधनों में दिया जाता है :-

दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण को अधिनियम की धारा 14(ख) के अधीन अपने में निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए अधिनियम की धारा 36 के अधीन प्राधिकरण द्वारा बनाए गए विनियमों की चुनौती को ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं है ।

65. परिणामतः, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण तथा दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया प्रतिकूल मत सही विधि को निरूपित नहीं करता है । साथ-ही-साथ, हम यह स्पष्ट करते हैं कि व्यथित पक्षकार उच्च न्यायालय के समक्ष समुचित याचिका फाइल करके अधिनियम की धारा 36 के अधीन बनाए गए विनियमों की विधिमान्यता को चुनौती देने के लिए स्वतंत्र होंगे ।

66. मामलों को अब 2005 की सिविल अपील सं. 3298 और कुछ संबद्ध मामलों में तारीख 6 फरवरी, 2007 को पारित किए गए आदेश द्वारा विरचित प्रश्नों का विनिश्चय करने के लिए समुचित न्यायपीठ के समक्ष सूचीबद्ध किया जाए ।

प्राथमिक मुद्दे का विनिश्चय किया गया ।

जस./अनू.

[2014] 2 उम. नि. प. 264

वरिन्दर सिंह

बनाम

पंजाब राज्य और एक अन्य

16 जनवरी, 2014

न्यायमूर्ति एस. के. मुखोपाध्याय और न्यायमूर्ति वी. गोपाल गौडा

कारागार अधिनियम, 1894 (1894 का 9) – धारा 45 – कारागार अपराध – बंदी और दर्शक में अंतर – धारा 45 के खंड (12) के अंतर्गत उल्लिखित अपराध केवल उसी व्यक्ति द्वारा कारित किए जा सकते हैं जो कारागार में बंदी है अन्यथा नहीं, यह धारा दर्शक द्वारा किए गए अपराध को लागू नहीं होगी ।

कारागार अधिनियम, 1894 – धारा 42 – कारागार अपराध – प्रतिषिद्ध संपर्क – प्रतिषिद्ध वस्तुओं का कारागार में लाया जाना – धारा 42 के अधीन केवल वही संपर्क प्रतिषिद्ध माना जाएगा जो धारा 59 के अधीन बनाए गए नियमों के प्रतिकूल होगा अन्यथा नहीं ।

कारागार अधिनियम, 1894 – धारा 52-क [सपठित कारागार (पंजाब संशोधन) विधेयक, 2011] – अपराध कारित किए जाने और अधिसूचना की तारीख का महत्व – पंजाब सरकार द्वारा जारी की गई अधिसूचना मार्च, 2011 को प्रवृत्त हुई है तथा अपराध सितंबर, 2009 में कारित किया गया है, अतः यह अधिसूचना वर्तमान मामले को लागू नहीं होगी और अपीलार्थी के विरुद्ध कोई भी मामला नहीं बनेगा ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 482 – उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या परिवाद का अभिखंडित किया जाना – जहां प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या परिवाद में ऐसे अभिकथन किए गए हों कि यदि उन्हें यूं ही मान लिया जाए और पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया जाए तब भी उनसे अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम-दृष्ट्या कोई भी अपराध गठित नहीं होता हो, तब न्यायालय को ऐसी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या परिवाद को खारिज कर देना चाहिए ।

इस मामले में अपीलार्थी एक दर्शक के रूप में केंद्रीय कारागार फिरोजपुर गया था वहां पर तलाशी लिए जाने पर उसकी पगड़ी से एक

मोबाइल फोन और उसके जूते में से एक चार्जर बरामद हुआ। तारीख 24 सितंबर, 2009 को पुलिस थाना, फिरोजपुर में कारागार अधिनियम, 1894 की धारा 42 और 45 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, फिरोजपुर ने इस अधिनियम की धारा 42 और 45 के अधीन उसे आरोपित किया। अपीलार्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के समक्ष याचिका फाइल की जिसमें प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिखंडित किए जाने की प्रार्थना की। पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने याचिका खारिज कर दी। उच्च न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थी ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की। उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त कर दिया। अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – अपराध कारित किए जाने की तारीख को अपीलार्थी बंदी नहीं था। इस प्रकार वह अधिनियम की धारा 45 के अधीन यथा परिभाषित “कारागार अपराध” कारित कर ही नहीं सकता था। जहां तक अधिनियम की धारा 42 का संबंध है, इस धारा के अधीन यह उपबंध किया गया है कि केवल वह संपर्क प्रतिषिद्ध है जो अधिनियम की धारा 59 के अधीन बनाए गए नियम के प्रतिकूल है। (पैरा 9)

पंजाब जेल मैनुअल में उल्लिखित सूची में जिन प्रतिषिद्ध वस्तुओं का उल्लेख किया गया है उनमें मोबाइल फोन या चार्जर नहीं है। इस प्रकार, यदि संसूचना देने का प्रयास किया गया था, तब भी वह कारागार नियम के प्रतिकूल नहीं है, इस प्रकार, ऐसा करना अधिनियम की धारा 42 के अधीन अपराध नहीं है। (पैरा 10)

इस प्रकार इस धारा के अंतर्गत किसी बंदी द्वारा मोबाइल फोन रखे जाने और उसकी आपूर्ति किए जाने को अपराध कहा गया है। पंजाब सरकार द्वारा जारी की गई अधिसूचना तारीख 8 मार्च, 2011 को प्रवृत्त हुई है। प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीख 24 सितंबर, 2009 की है। निःसंदेह यह अधिसूचना वर्तमान मामले को लागू नहीं होगी क्योंकि अभिकथित अपराध वर्ष 2009 में कारित हुआ था और दंडिक विधि के मामले में भूतलक्षी प्रभाव लागू नहीं होगा। इसलिए, अपीलार्थी के विरुद्ध कोई भी मामला नहीं बनता है और हम आक्षेपित निर्णय में उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत से सहमत नहीं हैं। हम एतद्द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हैं कि यह धारा वर्तमान मामले के तथ्यों को लागू नहीं हो सकती। (पैरा 11)

इस धारा के अधीन उच्च न्यायालय को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिखंडित करने की शक्ति प्राप्त है। न्यायालय ने एक मामले में निम्न परिस्थितियां अधिकथित की हैं जिनमें उच्च न्यायालय धारा 482 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिखंडित कर सकता है – 1. जहां प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या परिवाद में ऐसे अभिकथन किए गए हों कि यदि उन्हें यूं ही मान लिया जाए और पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया जाए तब भी उनसे अभियुक्त के विरुद्ध प्रथमदृष्ट्या कोई भी अपराध गठित नहीं होता हो और न ही कोई मामला बनता हो। 2. जहां प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में किए गए अभिकथन और उससे संबंधित अन्य सामग्री से, यदि कोई हो, कोई संज्ञेय अपराध प्रकट नहीं होता हो और संहिता की धारा 156(1) के अधीन पुलिस अधिकारी द्वारा किया गया अन्वेषण तब ही न्यायोचित हो जब संहिता की धारा 155(2) के अर्थान्तर्गत मजिस्ट्रेट का आदेश किया गया हो। 3. जहां प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या परिवाद में किए गए असंविवादित अभिकथन और उनके समर्थन में प्राप्त किए गए साक्ष्य से अभियुक्त के विरुद्ध किसी भी अपराध का कारित किया जाना प्रकट न होता हो और न ही उसके विरुद्ध कोई मामला बनता हो। 4. जहां प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में किए गए अभिकथनों से कोई भी संज्ञेय अपराध गठित नहीं होता हो किंतु केवल असंज्ञेय अपराध गठित होता हो, वहां संहिता की धारा 155(2) के अधीन यथा अनुध्यात मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी भी पुलिस अधिकारी द्वारा कोई भी अन्वेषण किए जाने को अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है। 5. जहां प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या परिवाद में किए गए अभिकथन इतने अर्थहीन हों और अंतर्निहित रूप से इतने असंभावी हों कि उनके आधार पर कोई भी प्रज्ञावान व्यक्ति इस न्यायोचित निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सके कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए कोई भी पर्याप्त आधार है। 6. जहां कार्यवाहियां संस्थित किए जाने और उनके जारी रखे जाने के लिए और/या जहां संहिता या संबद्ध अधिनियम के किसी भी उपबंध जिसके अधीन दांडिक कार्यवाही संस्थित की गई है में सम्मिलित स्पष्ट विधिक वर्जन हो जिससे व्यथित पक्षकार की शिकायत प्रबलता से दूर हो सके। 7. जहां कोई दांडिक कार्यवाही स्पष्ट रूप से दुर्भावनापूर्ण चलाई जा रही हो और/या वह कार्यवाही अभियुक्त से बदला लेने के अंतरस्थ हेतु के साथ विद्वेषपूर्ण रूप से और उसे प्राइवेट तथा निजी शिकायत को लेकर नीचा दिखाने के लिए संस्थित की गई हो। अपीलार्थी का मामला भजन लाल वाले मामले में

उल्लिखित प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिखंडित किए जाने के आधारों में से परिस्थिति (1) के अंतर्गत स्पष्ट रूप से आता है। अपराध की तारीख को पंजाब कारागार मैन्युअल के अधीन प्रतिषिद्ध वस्तुओं में सूचीबद्ध नहीं किया गया था। इस प्रकार, अधिनियम की धारा 42 के अधीन कोई भी अपराध नहीं बनता है क्योंकि नियमों के प्रतिकूल कोई भी संसूचना नहीं दी गई थी और न ही देने का प्रयास किया गया था। इसके अतिरिक्त अपराध की तारीख को अपीलार्थी बंदी नहीं था। इस प्रकार, वह अधिनियम की धारा 45 के अधीन यथा परिभाषित कारागार अपराध कारित कर ही नहीं सकता था। (पैरा 13 और 15)

विनिर्दिष्ट निर्णय

पैरा

- [2009] (2009) 14 एस. सी. सी. 244 :
सुंदर बाबू बनाम तमिलनाडु राज्य ; 14
- [1992] (1992) सप्ली. (1) एस. सी. सी. 335 :
हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल । 13, 15
- अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2014 की दांडिक अपील सं. 147.
(2013 की विशेष इजाजत याचिका
सं. 7107 से उद्भूत)

2011 की दांडिक प्रकीर्ण आवेदन सं. 13296 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ के तारीख 19 जुलाई, 2013 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील।

- अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री आर. के. ढीन्ढ, सुरिन्दर सिंह
और बलबीर सिंह गुप्ता
- प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री वी. मधुकर (अपर महाधिवक्ता),
सुश्री अनविता, कुलदीप सिंह और
सुश्री नरेश बक्शी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति वी. गोपाल गौडा ने दिया।

न्या. गौडा – इजाजत प्रदान की जाती है।

2. अपीलार्थी ने इस अपील में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ द्वारा 2011 की दांडिक प्रकीर्ण याचिका सं. एम. 13296 (ओ.एण्ड एम.) में पारित किए गए निर्णय और अंतिम आदेश की शुद्धता पर प्रश्न

उठाया है और अपने पक्षकथन के समर्थन में अनेक तथ्यों और विधिक प्रतिवादों को प्रस्तुत किया है ।

3. अपीलार्थी के पक्षकथन का मूल्यांकन करने और यह पता लगाने के लिए आवश्यक सुसंगत तथ्य निम्न प्रकार हैं कि अपीलार्थी इस अपील में मांगे गए अनुतोष को पाने का हकदार है या नहीं ।

अपीलार्थी तारीख 17 सितंबर, 2009 को एक दर्शक के रूप में केंद्रीय कारागार, फिरोजपुर गया था । वहां पर तलाशी लिए जाने पर उसकी पगड़ी से एक मोबाइल फोन और उसके जूते में से एक चार्जर बरामद हुआ । तारीख 24 सितंबर, 2009 को पुलिस थाना फिरोजपुर में कारागार अधिनियम, 1894 में (जिसे संक्षेप में “अधिनियम” कहा गया है) की धारा 42 और 45 के अधीन (अपराध के लिए) प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई । तारीख 1 मई, 2010 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, फिरोजपुर ने इस अधिनियम की धारा 42 और 45 के अधीन (अपराध के लिए) उसे आरोपित किया । अपीलार्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के समक्ष याचिका फाइल की जिसमें प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिखंडित किए जाने की प्रार्थना की । पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने तारीख 19 जुलाई, 2013 के आक्षेपित निर्णय और अंतिम आदेश द्वारा याचिका खारिज कर दी और अन्य बातों के साथ यह अभिनिर्धारित किया कि “..... अभियुक्त विचारण के दौरान वे सभी अभिवाक् करने के लिए स्वतंत्र हैं जो उसको उपलब्ध है ।”

4. उच्च न्यायालय ने अपने आक्षेपित आदेश में अधिनियम की धारा 42 का निर्वचन किया है और यह अभिनिर्धारित किया है कि जो कोई किसी बंदी के साथ संपर्क करता है या संपर्क करने का प्रयास करता है वह दंडित किए जाने के लिए दार्ड है । न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि इस मामले में का अपीलार्थी मोबाइल फोन और उसका चार्जर लेकर जेल में प्रवेश कर रहा था जिससे यह स्पष्ट था कि किसी बंदी के साथ संपर्क करना संभव था । यह अभिनिर्धारित किया गया है कि “चालान प्रस्तुत किए जाने के पश्चात्, याची पर आरोप विरचित किए गए । इन परिस्थितियों में, इस प्रक्रम पर, प्रश्नगत प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को अभिखंडित करने का कोई भी आधार नहीं बनता है ।”

5. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने इस प्रतिवाद का मूल्यांकन नहीं किया है कि अधिनियम की

धारा 42 और 45 के अधीन अपराध नहीं बनता है और यह कि मोबाइल फोन और चार्जर प्रतिषिद्ध वस्तुओं की सूची में नहीं आते हैं। यह भी दलील दी गई है कि धारा 52-क जिसके अंतर्गत मोबाइल फोन लेकर जाना प्रतिषिद्ध किया गया है, अभी तक अधिसूचित नहीं की गई है और यह कि अभी तक यह विधेयक ही है। यह भी दलील दी गई है कि यदि अधिसूचना को क्रियान्वित किए जाने योग्य मान लिया जाए, तब भी वह तारीख 8 मार्च, 2011 से प्रभावित हुई है। स्वीकृत रूप से यह अपराध वर्ष 2009 में कारित किया गया था, और इस प्रकार यह अधिसूचना इस मामले को लागू नहीं होगी क्योंकि यह भविष्यलक्षी प्रकृति की है।

6. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अपीलार्थी अपनी पगड़ी में मोबाइल फोन और उसका चार्जर अपने जूते में छुपाए हुए था, इस प्रकार प्रथमदृष्ट्या अधिनियम की धारा 42 के अधीन उसके विरुद्ध मामला बनता है। काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि आरोप पत्र में उल्लिखित धाराएं लागू होंगी और इस प्रक्रम पर न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है।

7. हमने परस्पर विरोधी विधिक प्रतिवादों को सुना है और अभिलेख पर प्रस्तुत दस्तावेजों का परिशीलन किया है। हमारे विचार के लिए दो मुद्दे सामने आए हैं :-

(1) कारागार अधिनियम, 1894 की धारा 42 और 45 (12) के अधीन अपराध बनता है या नहीं ?

(2) प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिखंडित किए जाने के लिए फाइल की गई याचिका को खारिज करके उच्च न्यायालय ने न्यायोचित किया है या नहीं ?

मुद्दा सं. 1 का उत्तर -

8. हमें अधिनियम की धारा 42 और 45 पर विस्तार से विचार करना होगा ताकि वर्तमान मुद्दे को समझा जा सके। अधिनियम की धारा 45 के अधीन उन कृत्यों का उपबंध किया गया है जिन्हें कारागार संबंधी अपराध कहा गया है जो बंदी द्वारा कारित किए जाते हैं। खंड (12) के अंतर्गत किसी भी प्रतिषिद्ध वस्तु को प्राप्त करना, अधिग्रहण करना या उसका स्थानांतरण करना कारागार संबंधी अपराध कहलाएगा।

9. अपराध कारित किए जाने की तारीख को अपीलार्थी बंदी नहीं था । इस प्रकार वह अधिनियम की धारा 45 के अधीन यथा परिभाषित “कारागार अपराध” कारित कर ही नहीं सकता था । जहां तक अधिनियम की धारा 42 का संबंध है, इस धारा के अधीन यह उपबंध किया गया है कि केवल वह संपर्क प्रतिषिद्ध है जो अधिनियम की धारा 59 के अधीन बनाए गए नियम के प्रतिकूल है । अधिनियम की धारा 42 निम्न प्रकार है :-

“42. प्रतिषिद्ध वस्तुओं के कारागार में लाने या वहां से हटाने के लिए तथा बंदियों के साथ संपर्क के लिए शास्ति – जो कोई धारा 59 के अधीन किसी नियम के प्रतिकूल कोई प्रतिषिद्ध वस्तु किसी कारागार में लाएगा या वहां से हटाएगा या किसी भी साधन को लाने या हटाने का प्रयत्न करेगा या कारागार की सीमाओं के बाहर किसी बंदी को प्रदाय करेगा या प्रदाय करने का प्रयत्न करेगा,

और कारागार का प्रत्येक अधिकारी, जो उस नियम के प्रतिकूल कोई वस्तु जानबूझकर किसी कारागार में लाए जाने या वहां से हटाए जाने देगा, किसी बंदी को पास रखने देगा या कारागार की सीमाओं के बाहर किसी बंदी को प्रदाय होने देगा,

और जो कोई ऐसे किसी नियम के प्रतिकूल, किसी बंदी के साथ संपर्क करेगा या संपर्क करने का प्रयत्न करेगा,

और जो कोई इस धारा द्वारा दंडनीय किसी अपराध को दुष्प्रेरित करेगा,

वह किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष दोषसिद्ध होने पर कारावास से, जिसकी अवधि छह मास से अधिक की नहीं होगी, या जुर्माने से, जो दो सौ रुपए से अधिक का नहीं होगा अथवा दोनों से, दंडनीय होगा ।”

10. पंजाब जेल मैनुअल के अनुसार पंजाब राज्य के कारागारों में प्रतिषिद्ध की गई वस्तुओं को सूचीबद्ध किया गया है । इस मैनुअल के पैरा 606 में निम्न प्रतिषिद्ध वस्तुओं की सूची दी गई है :-

“.....

(1) स्प्रिट से बनी किसी भी प्रकार की मदिरा ;

(2) तम्बाकू और किसी भी प्रकार के ऐसे पदार्थ जिनका प्रयोग धूम्रपान करने, चबाने या सूंघने के लिए आशयित हो या ऐसा करने का आशय किया जा सकता हो और किसी भी प्रकार के साधन तथा उपक्रम जिनका प्रयोग ऐसे पदार्थ का धूम्रपान करने, उसे चबाने या

उसे संधने के लिए या उसके संबंध में किया जा सके ;

(3) सभी विस्फोटक, स्वापक या विषैले पदार्थ और रसायन चाहे वे किसी भी प्रकार के द्रव हों या ठोस ;

(4) सभी आयुध और हथियार, और ऐसी वस्तुएं जिनका प्रयोग किसी भी प्रकार के हथियार के रूप में किया जा सके ;

(5) सभी प्रकार की धातु-मुद्राएं, धातुएं, सिक्के, जवाहिरात, आभूषण, करेंसी नोट, प्रतिभूतियां और सभी प्रकार की मूल्यवान वस्तुएं ;

(6) सभी प्रकार की पुस्तकें, कागज और छपे हुए या लिखे हुए दस्तावेज और किसी भी प्रकार की छपाई करने या लिखने से संबंधित सामग्री और उपक्रम ;

(7) तार, रस्सी, जंजीर और ऐसी सभी सामग्रियां जिनसे किसी भी प्रकार का तार या रस्सी या जंजीर बनाए जा सकें ;

(8) किसी भी प्रकार की लकड़ी, ईंटें, पत्थर और मिट्टी ।”

इस सूची में जिन प्रतिषिद्ध वस्तुओं का उल्लेख किया गया है उनमें मोबाइल फोन या चार्जर नहीं है । इस प्रकार, यदि संसूचना देने का प्रयास किया गया था, तब भी वह कारागार नियम के प्रतिकूल नहीं है, इस प्रकार, ऐसा करना अधिनियम की धारा 42 के अधीन अपराध नहीं है ।

11. पंजाब कारागार (संशोधन) विधेयक, 2011 के अंतर्गत इस अधिनियम में धारा 52-क जोड़ी गई है । यह धारा इस प्रकार है :-

*“52-क.(1) इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी यदि कोई बंदी मोबाइल फोन रखने, प्रचालन करने या प्रयोग करने या उसके किसी पुर्जे जैसे सिम-कार्ड, मेमोरी-कार्ड, बैटरी या चार्जर रखने का दोषी पाया जाता है या कोई बंदी या कोई अन्य व्यक्ति उनके प्रदाय में सहायता करता है या उसका दुष्प्रेरण करता है या

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :-

“52-A.(1)- Notwithstanding anything contained in this Act, if any prisoner is found guilty of possessing, operating or using a mobile phone or their component parts as like SIM card, memory card, battery or charger or if the prisoner or any other person assists or abets or instigates in the supply thereof, he shall be punished with imprisonment for a term not exceeding one year or with fine not exceeding Rs. 25,000/- or with both.....”

ऐसा करने के लिए उकसाता है तो वह एक वर्ष से अनधिक कारावास या 25,000/- रुपए से अनधिक जुर्माने या दोनों से दंडनीय होगा ।”

इस प्रकार इस धारा के अंतर्गत किसी बंदी द्वारा मोबाइल फोन रखे जाने और उसकी आपूर्ति किए जाने को अपराध कहा गया है । पंजाब सरकार द्वारा जारी की गई अधिसूचना तारीख 8 मार्च, 2011 को प्रवृत्त हुई है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीख 24 सितंबर, 2009 की है । निःसंदेह यह अधिसूचना वर्तमान मामले को लागू नहीं होगी क्योंकि अभिकथित अपराध वर्ष 2009 में कारित हुआ था और दांडिक विधि के मामले में भूतलक्षी प्रभाव लागू नहीं होगा । इसलिए, अपीलार्थी के विरुद्ध कोई भी मामला नहीं बनता है और हम आक्षेपित निर्णय में उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत से सहमत नहीं हैं । हम एतद्द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हैं कि यह धारा वर्तमान मामले के तथ्यों को लागू नहीं हो सकती ।

मुद्दा सं. 2 का उत्तर –

12. हमारा यह मत है कि सुस्थापित विधि सिद्धांतों के आधार पर उच्च न्यायालय ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिखंडित कराने के लिए फाइल की गई याचिका को खारिज करने में गलती की है ।

13. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 निम्न प्रकार है :-

“**धारा 482 – उच्च न्यायालय की अन्तर्निहित शक्तियों की व्यावृत्ति** – इस संहिता की कोई बात उच्च न्यायालय की ऐसे आदेश देने की अन्तर्निहित शक्ति को सीमित या प्रभावित करने वाली न समझी जाएगी जैसे इस संहिता के अधीन किसी आदेश को प्रभावी करने के लिए या किसी न्यायालय की कार्यवाही का दुरुपयोग निवारित करने के लिए या किसी अन्य प्रकार से न्याय के उद्देश्यों की प्राप्ति सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हो ।”

इस धारा के अधीन उच्च न्यायालय को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिखंडित करने की शक्ति प्राप्त है । इस न्यायालय ने हरियाणा राज्य बनाम **भजन लाल**¹ वाले मामले में निम्न परिस्थितियां अधिकथित की हैं जिनमें उच्च न्यायालय धारा 482 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिखंडित कर सकता है :-

¹ (1992) सप्ली. (1) एस. सी. सी. 335.

“(1) जहां प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या परिवाद में ऐसे अभिकथन किए गए हों कि यदि उन्हें यूं ही मान लिया जाए और पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया जाए तब भी उनसे अभियुक्त के विरुद्ध प्रथमदृष्ट्या कोई भी अपराध गठित नहीं होता हो और न ही कोई मामला बनता हो ।

(2) जहां प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में किए गए अभिकथन और उससे संबंधित अन्य सामग्री से, यदि कोई हो, कोई संज्ञेय अपराध प्रकट नहीं होता हो और संहिता की धारा 156(1) के अधीन पुलिस अधिकारी द्वारा किया गया अन्वेषण तब ही न्यायोचित हो जब संहिता की धारा 155(2) के अर्थान्तर्गत मजिस्ट्रेट का आदेश किया गया हो ।

(3) जहां प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या परिवाद में किए गए असंविवादित अभिकथन और उनके समर्थन में प्राप्त किए गए साक्ष्य से अभियुक्त के विरुद्ध किसी भी अपराध का कारित किया जाना प्रकट न होता हो और न ही उसके विरुद्ध कोई मामला बनता हो ।

(4) जहां प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में किए गए अभिकथनों से कोई भी संज्ञेय अपराध गठित नहीं होता हो किंतु केवल असंज्ञेय अपराध गठित होता हो, वहां संहिता की धारा 155(2) के अधीन यथा अनुध्यात मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी भी पुलिस अधिकारी द्वारा कोई भी अन्वेषण किए जाने को अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है ।

(5) जहां प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या परिवाद में किए गए अभिकथन इतने अर्थहीन हों और अंतर्निहित रूप से इतने असंभावी हों कि उनके आधार पर कोई भी प्रज्ञावान व्यक्ति इस न्यायोचित निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सके कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए कोई भी पर्याप्त आधार है ।

(6) जहां कार्यवाहियां संस्थित किए जाने और उनके जारी रखे जाने के लिए और/या जहां संहिता या संबद्ध अधिनियम के किसी भी उपबंध जिसके अधीन दांडिक कार्यवाही संस्थित की गई है में सम्मिलित स्पष्ट विधिक वर्जन हो जिससे व्यथित पक्षकार की शिकायत प्रबलता से दूर हो सके ।

(7) जहां कोई दांडिक कार्यवाही स्पष्ट रूप से दुर्भावनापूर्ण चलाई जा रही हो और/या वह कार्यवाही अभियुक्त से बदला लेने के

अंतरस्थ हेतु के साथ विद्वेषपूर्ण रूप से और उसे प्राइवेट तथा निजी शिकायत को लेकर नीचा दिखाने के लिए संस्थित की गई हो ।”

14. इन सिद्धांतों को **सुंदर बाबू** बनाम **तमिलनाडु राज्य**¹ वाले मामले के पैरा 4 में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा पुनः दोहराया गया है ।

15. अपीलार्थी का मामला **भजन लाल** (उपरोक्त) वाले मामले में उल्लिखित प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिखंडित किए जाने के आधारों में से परिस्थिति (1) के अंतर्गत स्पष्ट रूप से आता है । अपराध की तारीख को पंजाब कारागार मैनुअल के अधीन प्रतिषिद्ध वस्तुओं में सूचीबद्ध नहीं किया गया था । इस प्रकार, अधिनियम की धारा 42 के अधीन कोई भी अपराध नहीं बनता है क्योंकि नियमों के प्रतिकूल कोई भी संसूचना नहीं दी गई थी और न ही देने का प्रयास किया गया था । इसके अतिरिक्त अपराध की तारीख को अपीलार्थी बंदी नहीं था । इस प्रकार, वह अधिनियम की धारा 45 के अधीन यथा परिभाषित कारागार अपराध कारित कर ही नहीं सकता था ।

16. पूर्वगामी कारणों के आधार पर, अपील मंजूर की जाती है और उच्च न्यायालय का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है । अपीलार्थी के विरुद्ध तारीख 29 सितंबर, 2009 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट और कार्यवाहियां अभिखंडित की जाती हैं । खर्चों के लिए कोई भी आदेश नहीं किया जा रहा है ।

अपील मंजूर की गई ।

अस./अनू.

¹ (2009) 14 एस. सी. सी. 244.

[2014] 2 उम. नि. प. 275

दीपक भंडारी

बनाम

हिमाचल प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम लिमिटेड
और अन्य

29 जनवरी, 2014

न्यायमूर्ति के. एस. राधाकृष्णन् और न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी

परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36) – अनुच्छेद 136, अनुच्छेद 137 और अनुच्छेद 55 [सपठित राज्य वित्तीय निगम अधिनियम, 1951 (1951 का 63) की धारा 29 और 31] – वित्तीय निगमों द्वारा प्रत्युद्धरण वाद – वाद फाइल करने के लिए परिसीमा का आरंभिक बिन्दु – वित्तीय निगम द्वारा उधार की वसूली के लिए अनुस्मरण सूचना जारी करने के बाद धारा 29 के अधीन कार्यवाहियां आरंभ करना और आस्तियों का विक्रय करना – आस्तियों के विक्रय आगम को समायोजित करने के बाद अतिशेष रकम की वसूली के लिए कंपनी के निदेशकों के विरुद्ध वाद फाइल किया जाना – जब निगम धारा 29 का अवलंब लेकर उधार की वसूली के लिए कार्यवाही आरंभ करता है तब अतिशेष की वसूली के लिए परिसीमा अवधि विक्रय आगमों का समायोजन करने के बाद से ही आरंभ होगी और वह वाद अनुच्छेद 55 के अंतर्गत आएगा चूंकि क्षतिपूर्ति की संविदा के आधार पर वाद चलाने का अधिकार तब उद्भूत होता है जब आस्तियों के विक्रय आगम निगम के देयों की तुष्टि करने में अपर्याप्त पाए जाते हैं।

प्रस्तुत मामले में प्रत्यर्थी सं. 1, अर्थात्, हिमाचल प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम लिमिटेड राज्य विकास निगम अधिनियम के अधीन एक वित्तीय निगम है। यह अधिनियम के उद्देश्यों को कार्यान्वित करने के प्रयोजनार्थ गठित एक कानूनी निकाय है। यह कंपनी अधिनियम, 1956 के अधीन निगमित एक कंपनी है, जो कि कंपनियों को संक्रियाएं स्थापित करने और प्रारंभ करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने के कारखार में लगी हुई है। प्रत्यर्थी सं. 2 कंपनी ऐसा औद्योगिक समुत्थान है जिसने प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा संवितरित उधार के प्रतिदाय में व्यतिक्रम किया है। यह अब परिसमापनाधीन है। प्रत्यर्थी सं. 3 शासकीय समापक है

जिसे दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा कंपनी के परिसमापन के प्रयोजनों के लिए नियुक्त किया गया था। प्रत्यर्थी सं. 4 और 5 निगम के साथ उधार करार किए जाने के समय कंपनी के निदेशक थे। अपीलार्थी, जो कि कंपनी का निदेशक भी था, कंपनी द्वारा निगम और कंपनी के बीच निष्पादित उधार करारों द्वारा लिए गए उधार के संदाय के लिए प्रत्याभूतिदाता था। कंपनी ने निगम द्वारा उसे संवितरित की गई उधार रकम के प्रतिदाय में व्यतिक्रम किया। निगम ने अनुस्मरण सूचना (रिकाल नोटिस) जारी की जिसके द्वारा 77,35,607/- रुपए की रकम तथा तारीख 10 सितम्बर, 1990 से प्रोद्भूत होने वाले अतिरिक्त ब्याज की मांग की गई। कंपनी प्रतिदाय करने में असफल रही और तदनुसार निगम ने राज्य वित्तीय निगम अधिनियम की धारा 29 के अधीन कंपनी की बंधकित/आडमान रखी गई आस्तियों को ग्रहण करने की कार्यवाही आरंभ की। कंपनी की आस्तियों को निगम द्वारा ग्रहण कर लिया गया था और उनका 96,00,000/- रुपए की धनराशि के लिए विक्रय कर दिया गया था। चूंकि कंपनी ने हिमाचल प्रदेश वित्तीय निगम से भी ऋण लिया हुआ था इसलिए कंपनी की आस्तियों के विक्रय से वसूल की गई रकम इन दोनों प्रतिभूत लेनदारों के बीच प्रभाजित कर दी गई थी। विक्रय आगमों को निगम और हिमाचल प्रदेश वित्तीय निगम द्वारा दिए गए अवधिक उधारों के अनुपात में कंपनी के बकाया ऋणों को समायोजित करने के पश्चात् 68,96,564/- रुपए की धनराशि अब भी निगम के विरुद्ध बकाया रह गई। निगम ने 30,60,732/- रुपए की धनराशि की वसूली के लिए एक सिविल वाद फाइल किया। 1995 का सिविल वाद सं. 85 हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 6 जून, 2008 के निर्णय और डिक्री द्वारा निगम के पक्ष में डिक्री कर दिया गया था जिसके द्वारा वाद फाइल करने की तारीख से उक्त रकम की वसूली तक 12 प्रतिशत की दर से ब्याज सहित 30,60,732/- रुपए (तीस लाख साठ हजार सात सौ बत्तीस रुपए केवल) की डिक्री अनुदत्त की गई थी। उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष प्रतिवादियों द्वारा, जिनमें प्रस्तुत मामले में के अपीलार्थी भी हैं, यह अभिवाक् किया गया था कि वाद समयवर्जित था क्योंकि यह परिसीमा अवधि के प्रारंभ की तारीख से तीन वर्ष की अवधि के परे फाइल किया गया था। प्रतिवादियों के अनुसार, प्रत्युद्धरण वाद फाइल करने के लिए वाद हेतुक तारीख 21 मई, 1990 को उद्भूत हुआ था जब निगम द्वारा कंपनी और प्रत्याभूति-दाताओं को अनुस्मरण सूचना जारी की गई थी। इसलिए, वाद उक्त तारीख से तीन वर्ष की अवधि के भीतर फाइल किया

जाना था और इस रीति में गणना करने पर वाद फाइल करने की अंतिम तारीख 20 मई, 1993 थी। इस प्रकार, यह अभिवाक् किया गया था कि तारीख 26 दिसम्बर, 1994 को फाइल किया गया वाद तारीख 21 मई, 1990 से तीन वर्ष की अवधि से परे था और इसलिए वह समयवर्जित था। दूसरी ओर, निगम ने यह दलील दी कि कंपनी की बंधकित/आडमान रखी गई आस्तियों का विक्रय करने के लिए कार्रवाई अधिनियम की धारा 29 के उपबंधों के अधीन आरंभ की गई थी और इन आस्तियों का विक्रय तारीख 21 मार्च, 1994 को सफल हुआ था। विक्रय आगमों की वसूली के पश्चात् ही प्रत्याभूति-दाताओं द्वारा संदेय रकम अभिनिश्चित की जा सकी थी। अतः, परिसीमा अवधि की गणना करने के लिए आरंभिक बिन्दु तारीख 31 मार्च, 1994 है और निगम द्वारा तारीख 26 दिसम्बर, 1996 को फाइल किया गया वाद परिसीमा अवधि के भीतर ही है। एकल न्यायाधीश ने निगम के पक्ष में विनिश्चय करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि वाद परिसीमा अवधि के भीतर ही है। वाद सभी प्रतिवादियों के विरुद्ध, जिनमें प्रस्तुत अपीलार्थी भी है, डिक्री कर दिया गया था और उन्हें डिक्रीत रकम का संदाय करने के लिए संयुक्ततः और पृथक्तः दायी ठहराया गया था। प्रस्तुत अपीलार्थी ने इस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अंतर-न्यायालयीय अपील फाइल की। खंड न्यायपीठ ने भी एकल न्यायाधीश के निष्कर्ष की अभिपुष्टि करते हुए और यह अभिनिर्धारित करते हुए कि वाद परिसीमा के भीतर था, अपीलार्थी की दलील को नकार दिया। उच्च न्यायालय के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई। उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – जब राज्य वित्तीय निगम, राज्य वित्तीय निगम अधिनियम, 1951 की धारा 29 के उपबंधों का अवलंब लेकर रकम की वसूली के लिए कदम उठाता है तो अतिशेष रकम की वसूली के लिए परिसीमा अवधि औद्योगिक समुत्थान की आस्तियों के विक्रय से प्राप्त आगमों को समायोजित करने के पश्चात् ही आरंभ होगी चूंकि निगम बंधकित/आडमान रखी गई आस्तियों के विक्रय के पश्चात् ही यह जानने की स्थिति में होगा कि क्या कोई कमी है या वसूल की गई रकम अधिक है। यह धारा 29 की उपधारा (1) की भाषा से स्पष्ट होता है जो स्थिति को पूर्णतः स्पष्ट करती है। (पैरा 21)

मात्र इस कारण कि निगम ने वित्तीय निगम अधिनियम की धारा 29 के अधीन कार्यवाही की, इसका अभिप्राय यह नहीं था कि क्षतिपूर्ति की

संविदा समाप्त हो गई थी । धारा 29 द्वारा निगम को मुख्य संविदा के अधीन आस्तियों का कब्जा ग्रहण करने और उनका विक्रय करने और देयों की वसूली करने मात्र के लिए समर्थ बनाया गया था । यह हो सकता है कि निगम द्वारा धारा 29 के अधीन कार्रवाई किए जाने और उनका कब्जा ग्रहण किए जाने पर वे मानित स्वामी बन गए । यह हो सकता है कि बंधक का अंत हो गया हो किन्तु क्षतिपूर्ति की संविदा, जो कि एक स्वतंत्र संविदा थी, समाप्त नहीं हुई थी । अतिशेष का दावा करने का अधिकार क्षतिपूर्ति की संविदा के अधीन केवल तभी उद्भूत हुआ था जब विक्रय आगम अपर्याप्त पाए गए थे । क्षतिपूर्ति की संविदा के आधार पर वाद चलाने का अधिकार आस्तियों का विक्रय किए जाने के पश्चात् उद्भूत हुआ था । प्रस्तुत मामला परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 55 के अंतर्गत आएगा जो कि पुराने परिसीमा अधिनियम, 1908 के अनुच्छेद 115 और अनुच्छेद 116 की तत्स्थानी है । क्षतिपूर्ति की संविदा/प्रतिभू के आधार पर वाद चलाने का अधिकार तब उद्भूत होगा जब संविदा का भंग हो जाता है । अतः, परिसीमा अवधि की गणना उस तारीख से की जानी है जब कंपनी की आस्तियों का विक्रय किया गया था न कि जब अनुस्मरण सूचना दी गई थी । (पैरा 22 और 23)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2007]	(2007) 13 स्केल 113 : ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती राज कुमारी और अन्य ;	16
[2006]	(2006) 9 एस. सी. सी. 617 : महाराष्ट्र राज्य वित्तीय निगम बनाम अशोक के. अग्रवाल और अन्य ;	14
[1995]	1995 का सिविल वाद सं. 85, जिसका विनिश्चय तारीख 6 जून, 2008 को किया गया था : हिमाचल प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम लिमिटेड बनाम मैसर्स आर. के. बी. हर्बल्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य ;	9
[1988]	1988 की सिविल अपील सं. 1971 जिसका विनिश्चय	

तारीख 18 दिसम्बर, 2003 को किया गया :

हिमाचल प्रदेश वित्तीय निगम बनाम पवन और अन्य । 17

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2014 की सिविल अपील सं. 1019.

2008 के मूल वाद आवेदन सं. 7 में हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय की शिमला न्यायपीठ के तारीख 4 जून, 2010 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री ध्रुव मेहता, ज्येष्ठ अधिवक्ता, पी. बी. सुरेश, विपिन नायर और उदयादित्य बनर्जी (मैसर्स टैम्पल ला फर्म की ओर से)

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री जे. एस. अत्री, ज्येष्ठ अधिवक्ता, (सुश्री) प्रियंका भरिहोक (रामेश्वर प्रसाद गोयल की ओर से)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी ने दिया ।

न्या. सीकरी – इजाजत दी जाती है ।

2. प्रस्तुत अपील में राज्य वित्तीय निगम अधिनियम के अधीन गठित राज्य वित्तीय निगमों द्वारा वसूली के लिए वाद फाइल करने की परिसीमा के आरंभिक बिन्दु से संबंधित विधि का महत्वपूर्ण प्रश्न उद्भूत हुआ है । हम प्रारंभ में ही यह स्पष्ट कर देते हैं कि हम किसी अछूते विषय पर विचार नहीं कर रहे हैं । इस विवाद्यक से संबंधित इस न्यायालय के दो निर्णय हैं । इसके साथ-साथ यह उल्लेख करना भी आवश्यक है कि इन दोनों निर्णयों में अंतर्विष्ट विधिक स्थिति को स्पष्ट करना और उनके विनिश्चयाधारों में सामंजस्य स्थापित करना भी इस कारण से अत्यावश्यक हो गया है क्योंकि वे परस्पर-विरोधी प्रकृति के हैं । इस संबंध में किसी भ्रम से बचने के लिए कि ऐसे मामलों में किस रीति में विचार किया जाए, इस प्रश्न पर व्यापक विचार-विमर्श करना आवश्यक हो गया है ।

3. प्रस्तुत अपील की विषयवस्तु के बारे में उपर्युक्त प्रारंभिक परिचय देने के पश्चात् अब हम उन तथ्यों का उल्लेख करते हैं जिनके परिणामस्वरूप परिसीमा का वह प्रश्न उद्भूत हुआ है जिसके बारे में हमारे समक्ष विवाद उत्पन्न किया गया है ।

4. प्रत्यर्थी सं. 1, अर्थात्, हिमाचल प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास

निगम लिमिटेड (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'निगम' कहा गया है) राज्य विकास निगम अधिनियम (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' कहा गया है) के अधीन एक वित्तीय निगम है। यह अधिनियम के उद्देश्यों को कार्यान्वित करने के प्रयोजनार्थ गठित एक कानूनी निकाय है। यह कंपनी अधिनियम, 1956 के अधीन निगमित एक कंपनी है, जो कि कंपनियों को सक्रिय एवं स्थापित करने और प्रारंभ करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने के कारखार में लगी हुई है। प्रत्यर्थी सं. 2 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'कंपनी' कहा गया है) ऐसा औद्योगिक समुत्थान है जिसने प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा संवितरित उधार के प्रतिदाय में व्यतिक्रम किया है। यह अब परिसमापनाधीन है। प्रत्यर्थी सं. 3 शासकीय समापक है जिसे दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा कंपनी के परिसमापन के प्रयोजनों के लिए नियुक्त किया गया था। प्रत्यर्थी सं. 4 और 5 निगम के साथ उधार करार किए जाने के समय कंपनी के निदेशक थे।

5. अपीलार्थी, जो कि कंपनी का निदेशक भी था, कंपनी द्वारा निगम और कंपनी के बीच निष्पादित उधार करारों द्वारा लिए गए उधार के संदाय के लिए प्रत्याभूतिदाता था। निम्नलिखित उधार करार, तत्स्थानी रकमों और प्रत्याभूतियों सहित निष्पादित किए गए थे :-

उधार करार तारीख	रकम	प्रत्याभूति विलेख की तारीख
5 जून, 1985	20.67 लाख	5 जून, 1985
7 अप्रैल, 1986	8.73 लाख	7 अप्रैल, 1986
24 नवम्बर, 1986	15.38 लाख	24 नवम्बर, 1986
28 जुलाई, 1987	7.76 लाख	
योग	52.54 लाख	

6. कंपनी ने निगम द्वारा उसे संवितरित की गई उधार रकम के प्रतिदाय में व्यतिक्रम किया। निगम ने तारीख 21 मई, 1990 की अनुस्मरण सूचना (रिकाल नोटिस) सं. पी.ए.सी.84/0/6705 जारी की जिसके द्वारा 77,35,607/- रुपए (सतहत्तर लाख पैंतीस हजार छह सौ सात रुपए केवल) की रकम तथा तारीख 10 सितम्बर, 1990 से प्रोद्भूत होने वाले अतिरिक्त ब्याज की मांग की गई।

7. कंपनी प्रतिदाय करने में असफल रही और तदनुसार निगम ने राज्य वित्तीय निगम अधिनियम, 1951 की धारा 29 के अधीन कंपनी की बंधकित/आडमान रखी गई आस्तियों को ग्रहण करने की कार्यवाही आरंभ की। कंपनी की आस्तियों को निगम द्वारा तारीख 10 जुलाई, 1992 को ग्रहण कर लिया गया था। कंपनी की बंधकित/आडमान रखी गई आस्तियों का प्रमुख समाचारपत्रों में विज्ञापन प्रकाशित कराकर प्रस्थापनाएं आमंत्रित करके तारीख 31 मार्च, 1994 को 96,00,000/- रुपए (छियानवे लाख रुपए केवल) की धनराशि के लिए विक्रय कर दिया गया था।

8. चूंकि कंपनी ने हिमाचल प्रदेश वित्तीय निगम से भी ऋण लिया हुआ था इसलिए कंपनी की आस्तियों के विक्रय से वसूल की गई रकम इन दोनों प्रतिभूत लेनदारों के बीच प्रभाजित कर दी गई थी। विक्रय आगमों को निगम और हिमाचल प्रदेश वित्तीय निगम द्वारा दिए गए अवधिक उधारों के अनुपात में कंपनी के बकाया ऋणों को समायोजित करने के पश्चात् 68,96,564/- रुपए (अड़सठ लाख छियानवे हजार पांच सौ चौसठ रुपए केवल) की धनराशि अब भी निगम के विरुद्ध बकाया रह गई।

9. निगम ने 30,60,732/- रुपए (तीस लाख साठ हजार सात सौ बत्तीस रुपए केवल) की धनराशि की वसूली के लिए हिमाचल प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम लिमिटेड बनाम मैसर्स आर. के. बी. हर्बल्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य¹ के नाम से तारीख 26 दिसम्बर, 1994 को 1995 का सिविल वाद सं. 85 फाइल किया। निगम द्वारा ऊपर उल्लिखित धनराशि की संगणना निम्न प्रकार की गई थी :-

तारीख 31 मई, 1994 को वसूलीय रकम	
मूल रकम (रुपयों में)	5,16,582
ब्याज	63,79,982
योग	68,96,564
घटा शास्तिक ब्याज	38,35,832
शुद्ध रकम जिसके लिए वाद फाइल किया गया था।	30,60,732

10. 1995 का सिविल वाद सं. 85 हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय

¹ 1995 का सिविल वाद सं. 85, जिसका विनिश्चय तारीख 6 जून, 2008 को किया गया था।

के एकल न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 6 जून, 2008 के निर्णय और डिक्री द्वारा निगम के पक्ष में डिक्री कर दिया गया था जिसके द्वारा वाद फाइल करने की तारीख से उक्त रकम की वसूली तक 12 प्रतिशत की दर से ब्याज सहित 30,60,732/- रुपए (तीस लाख साठ हजार सात सौ बत्तीस रुपए केवल) की डिक्री अनुदत्त की गई थी ।

11. उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष प्रतिवादियों द्वारा, जिनमें प्रस्तुत मामले में के अपीलार्थी भी हैं, यह अभिवाक् किया गया था कि वाद समयवर्जित था क्योंकि यह परिसीमा अवधि के प्रारंभ की तारीख से तीन वर्ष की अवधि के परे फाइल किया गया था । इस अभिवाक् का अधिमूल्यन करने के लिए हम कुछ सुसंगत तारीखों का सारांश प्रस्तुत करते हैं :-

तारीख	घटना
21 मई, 1990	निगम द्वारा बकाया रकम वापस करने के लिए अनुस्मरण सूचना भेजी गई ।
10 जुलाई, 1992	कंपनी की बंधकित/आडमान रखी गई आस्तियों को निगम द्वारा ग्रहण किया गया ।
31 मार्च, 1994	कंपनी की बंधकित/आडमान रखी गई आस्तियों का निगम द्वारा विक्रय किया गया ।
21 मई, 1994	कंपनी के सभी तीनों निदेशकों को बकाया रकम का संदाय करने के लिए सूचना जारी की गई ।
26 दिसम्बर, 1994	निगम द्वारा बकाया अतिशेष की वसूली के लिए वाद फाइल किया गया ।

12. प्रतिवादियों के अनुसार, प्रत्युद्धरण वाद फाइल करने के लिए वाद हेतुक तारीख 21 मई, 1990 को उद्भूत हुआ था जब निगम द्वारा कंपनी और प्रत्याभूति-दाताओं को अनुस्मरण सूचना जारी की गई थी । इसलिए,

वाद उक्त तारीख से तीन वर्ष की अवधि के भीतर फाइल किया जाना था और इस रीति में गणना करने पर वाद फाइल करने की अंतिम तारीख 20 मई, 1993 थी। इस प्रकार, यह अभिवाक् किया गया था कि तारीख 26 दिसम्बर, 1994 को फाइल किया गया वाद तारीख 21 मई, 1990 से तीन वर्ष की अवधि से परे था और इसलिए वह समयवर्जित था। दूसरी ओर, निगम ने यह दलील दी कि कंपनी की बंधकित/आडमान रखी गई आस्तियों का विक्रय करने के लिए कार्रवाई अधिनियम की धारा 29 के उपबंधों के अधीन आरंभ की गई थी और इन आस्तियों का विक्रय तारीख 21 मार्च, 1994 को सफल हुआ था। विक्रय आगमों की वसूली के पश्चात् ही प्रत्याभूति-दाताओं द्वारा संदेय रकम अभिनिश्चित की जा सकी थी। अतः, परिसीमा अवधि की गणना करने के लिए आरंभिक बिन्दु तारीख 31 मार्च, 1994 है और निगम द्वारा तारीख 26 दिसम्बर, 1996 को फाइल किया गया वाद परिसीमा अवधि के भीतर ही है।

13. विद्वान् एकल न्यायाधीश ने निगम के पक्ष में विनिश्चय करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि वाद परिसीमा अवधि के भीतर ही है। वाद सभी प्रतिवादियों के विरुद्ध, जिनमें प्रस्तुत अपीलार्थी भी है, डिक्री कर दिया गया था और उन्हें डिक्रीत रकम का संदाय करने के लिए संयुक्ततः और पृथक्तः दायी ठहराया गया था। प्रस्तुत अपीलार्थी ने तारीख 6 जून, 2008 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अंतर-न्यायालयीय अपील फाइल की। खंड न्यायपीठ ने भी एकल न्यायाधीश के निष्कर्ष की अभिपुष्टि करते हुए और यह अभिनिर्धारित करते हुए कि वाद परिसीमा के भीतर था, अपीलार्थी की दलील को नकार दिया।

14. हमने दोनों पक्षों की ओर से पक्षकारों के पक्षकथन का पहले ही उल्लेख कर दिया है। उपर्युक्त से यह प्रकट होता है कि मुख्य विवादक यह है कि क्या वाद फाइल करने के लिए परिसीमा अवधि तारीख 21 मई, 1990 को, जब अनुस्मरण सूचना जारी की गई थी आरंभ होगी या आरंभिक बिन्दु तारीख 31 मार्च, 1994 होगी जब कंपनी की आस्तियों का विक्रय किया गया था और उस तारीख को संदेय अतिशेष रकम (जिसके लिए वाद फाइल किया गया था) अभिनिश्चित की गई थी। हमने आरंभ में यह पहले ही इंगित कर दिया है कि इस न्यायालय के दो निर्णय ऐसे हैं जिनमें उपर्युक्त विवादक पर विचार किया गया है। प्रथम निर्णय **महाराष्ट्र**

राज्य वित्तीय निगम बनाम अशोक के. अग्रवाल और अन्य¹ वाले निर्णय के रूप में ज्ञात है। उस मामले में अपीलार्थी महाराष्ट्र राज्य वित्तीय निगम ने किसी कंपनी के पक्ष में पांच लाख रुपए स्वीकृत किए थे। प्रत्यर्थी उक्त उधार लेने वाली कंपनी के निदेशक थे और उन्होंने उधार के लिए प्रतिभूतियां दी थीं। जब कंपनी उधार का प्रतिदाय करने में असफल रही तो तारीख 8 मार्च, 1983 को एक सूचना जारी की गई थी जिसके द्वारा उधार लेने वालों से उसका देय वापस करने की अपेक्षा की गई थी। तारीख 25 अक्टूबर, 1983 को निगम द्वारा राज्य वित्तीय निगम अधिनियम, 1951 की धारा 31 और धारा 32 के अधीन एक आवेदन फाइल किया गया था। तारीख 11 जून, 1990 को उधार लेने वाली कंपनी की कुर्क की गई संपत्तियों का विक्रय कर दिया गया था। वसूल की गई रकम कम पड़ गई थी और इसलिए तारीख 17 जनवरी, 1991 को प्रत्यर्थी-प्रतिभुओं को सूचनाएं भेजी गई थीं और 14.5 प्रतिशत वार्षिक दर पर ब्याज सहित 16,79,033/- रुपए का दावा किया गया था। तारीख 2 जनवरी, 1992 को अपीलार्थी निगम ने अधिनियम की धारा 31(1)(कक) के अधीन उक्त अतिशेष रकम की वसूली के लिए एक आवेदन फाइल किया। प्रत्यर्थी ने यह दलील देते हुए विभिन्न आक्षेप उठाए जिनमें परिसीमा संबंधी आक्षेप भी था, कि परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 137 न कि अनुच्छेद 136 लागू होता था। प्रत्यर्थियों के अनुसार, परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 137 लागू होता था और उस उपबंध के अनुसार ऐसा आवेदन तीन वर्ष की अवधि के भीतर किया जा सकेगा। अनुच्छेद 137 ऐसे मामलों में लागू होता है जहां विनिर्दिष्ट रूप से कोई परिसीमा अवधि विहित नहीं है। यह दलील दी गई थी कि चूंकि अधिनियम की धारा 31 और धारा 32 के अधीन आवेदन करने के लिए कोई परिसीमा अवधि विहित नहीं की गई है इसलिए अनुच्छेद 137 लागू होगा। अपर जिला न्यायाधीश ने प्रत्यर्थियों की दलील को कायम रखा और निगम का आवेदन परिसीमा वर्जित होने के कारण खारिज कर दिया गया था। अपीलार्थी निगम ने उक्त आदेश के विरुद्ध मुम्बई उच्च न्यायालय की पणजी न्यायपीठ में अपील फाइल की। वह अपील उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 22 जुलाई, 1998 को आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दी गई थी। उच्च न्यायालय ने अपर जिला न्यायाधीश के तर्काधार को कायम रखा। इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए उच्च न्यायालय के आदेश की अभिपुष्टि कर दी कि

¹ (2006) 9 एस. सी. सी. 617.

परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 137 लागू होगा और वाद तीन वर्ष की अवधि के भीतर फाइल किया जाना था। वित्तीय निगम द्वारा अपने मामले को इस आधार पर परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 136 पर आधारित करते हुए दी गई दलील का इस न्यायालय द्वारा खंडन किया गया था कि धारा 138 निष्पादन कार्यवाहियों की प्रकृति की है और इसलिए वित्तीय निगम के पास डिक्रियों के निष्पादन के लिए 12 वर्ष की अवधि उपलब्ध है। इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 31 में एक विधिक कल्पना अंतर्विष्ट है और उसमें अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया के प्रति निर्देश किया गया है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं होगा कि वह यथार्थ भाव में किसी सिविल न्यायालय की डिक्री या आदेश है जो कि निष्पादित किया जाना है चूंकि सिविल न्यायालय की किसी डिक्री या आदेश को निष्पादित नहीं किया जा रहा है।

15. उपर्युक्त निर्णय के पठन से एक बात स्पष्ट होती है। न्यायालय का संबंध अधिनियम की धारा 31 के अधीन की जाने वाली कार्यवाहियों से था और विवाद्यक यह था कि क्या परिसीमा अवधि परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 137 के अनुसार तीन वर्ष होगी या परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 136 के अधीन यथा-उपबंधित 12 वर्ष होगी। न्यायालय ने उस विवाद्यक के संबंध में विचार करने की प्रक्रिया में अधिनियम की धारा 31 के अधीन कार्यवाहियों की प्रकृति के संबंध में भी विचार किया, अर्थात् क्या यह किसी वाद की या डिक्री के निष्पादन की प्रकृति में होगा। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए अपना उत्तर दिया कि ऐसी कार्यवाहियों के लिए परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 137 लागू होगा, जिसका अभिप्राय यह है कि परिसीमा अवधि तीन वर्ष है। इस निर्णय के पठन से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि इस संबंध में कोई विवाद्यक न तो उठाया गया था और न ही उस पर विचार किया गया था कि परिसीमा अवधि की गणना करने के लिए आरंभिक तारीख क्या होगी। अतः, स्पष्टतः उक्त निर्णय में इस पहलू पर कोई विचार-विमर्श या विनिश्चय नहीं किया गया है।

16. हम ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती राज कुमारी और अन्य¹ वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि के प्रति निर्देश करना चाहेंगे। उक्त मामले में, यह सुज्ञात प्रतिपादना स्पष्ट रीति में प्रतिपादित की गई है, अर्थात् किसी मामले का विनिश्चयाधार ही

¹ (2007) 13 स्कैल 113.

लागू होता है न कि वह निष्कर्ष जो कि उससे तर्कसम्मत रूप से निकलता है । हम उस निर्णय में से निम्नलिखित मताभिव्यक्तियां उद्धृत करना चाहेंगे :-

“10. किसी विनिश्चय का उस मामले के समक्ष वाली तथ्यात्मक पृष्ठभूमि का परिशीलन किए बिना अवलंब लेना स्पष्टतः अननुज्ञेय है । कोई विनिश्चय उसके अपने तथ्यों के आधार पर पूर्वनिर्णय होता है । प्रत्येक मामला अपनी विशेषताएं प्रस्तुत करता है । किसी न्यायाधीश द्वारा निर्णय देते समय कही गई प्रत्येक बात पूर्वनिर्णय गठित नहीं करती है । किसी न्यायाधीश के विनिश्चय में किसी पक्षकार को आबद्ध करने वाली बात वह सिद्धांत होता है जिसके आधार पर मामले का विनिश्चय किया जाता है और इस कारण से किसी विनिश्चय का विश्लेषण करना और विनिश्चयाधार को उससे अलग करना महत्वपूर्ण होता है । पूर्वनिर्णय के सुस्थापित सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक विनिश्चय में तीन मूलभूत प्रतिपादनाएं अंतर्विष्ट होती हैं – (i) तात्त्विक तथ्यों संबंधी निष्कर्ष, प्रत्यक्ष और अनुमानित । तथ्यों का अनुमानित निष्कर्ष वह अनुमान होता है जो न्यायाधीश प्रत्यक्ष या अवगम्य तथ्यों से निकालता है ; (ii) तथ्यों द्वारा प्रकट की गई विधिक समस्याओं को लागू होने वाले विधि के सिद्धांतों के कथन; और (iii) उपरोक्त के संयुक्त प्रभाव पर आधारित निर्णय । कोई विनिश्चय एक ऐसी नजीर होता है जिसके लिए उसमें वस्तुतः विनिश्चय किया जाता है । किसी विनिश्चय में सार उसका विनिश्चयाधार होता है न कि उसमें पाई जाने वाली प्रत्येक मताभिव्यक्ति और न कि निर्णय में की गई विभिन्न मताभिव्यक्तियों से तर्कसम्मत रूप से निकलने वाला निष्कर्ष । उस कारण या सिद्धांत की प्रतिपादना ही पूर्वनिर्णय के रूप में बाध्यकर है, जिसके आधार पर किसी न्यायालय के समक्ष प्रश्न का विनिश्चय किया गया है । उड़ीसा राज्य **बनाम** सुधांशु शेखर मिश्रा और अन्य, [(1970) आई. एल. एल. जे. 662 एस. सी.] और भारत संघ और अन्य **बनाम** धनवन्ती देवी और अन्य, [(1996) 6 एस. सी. सी. 44] वाले मामले देखिए । कोई मामला उस बात के लिए पूर्वनिर्णय और बाध्यकर है जो वह स्पष्ट रूप से विनिश्चित करता है और इससे अधिक कुछ नहीं । न्यायाधीशों द्वारा अपने निर्णयों में प्रयुक्त शब्दों का पठन इस प्रकार नहीं किया जाना चाहिए मानो कि वे संसद् के अधिनियम के शब्द हैं । क्विन **बनाम** लैदर्न, [(1901) अपील केसेज़

495 (एच. एल.)] वाले मामले में अर्ल आफ हाल्सबरी एल. सी. ने यह मत व्यक्त किया है कि प्रत्येक निर्णय का पठन इस प्रकार किया जाना चाहिए मानो वह साबित या साबित समझे गए विशिष्ट तथ्यों को लागू होता है चूंकि उन अभिव्यक्तियों की व्यापकता, जो उसमें पाई जाती हैं, संपूर्ण विधि की प्रतिपादना होना आशयित नहीं है बल्कि वह उस मामले के विशिष्ट तथ्यों द्वारा शासित और विशेषित होती हैं जिसमें ऐसी अभिव्यक्तियां पाई जाती हैं और कोई मामला केवल उस बात के लिए नजीर होता है जो वह वस्तुतः विनिश्चित करता है ।

11. न्यायालयों को इस बात पर विचार-विमर्श किए बिना विनिश्चयों का अवलंब नहीं लेना चाहिए कि किस प्रकार तथ्यात्मक स्थिति उस विनिश्चय की, जिसका अवलंब लिया जाता है, तथ्यात्मक स्थिति में उपयुक्त बैठती है । न्यायालयों की मताभिव्यक्तियों का पठन न तो यूकलिड की थियोरम के रूप में और न ही कानून के उपबंधों के रूप में किया जाना चाहिए और वह भी उनके संदर्भ से परे जाकर । इन मताभिव्यक्तियों का पठन अवश्य ही उस संदर्भ में किया जाना चाहिए जिनमें वे की गई प्रतीत होती हैं । न्यायालयों के निर्णय का अर्थान्वयन कानूनों के रूप में नहीं किया जाना है । किसी कानून के शब्दों, वाक्यांशों और उपबंधों का निर्वचन करने के लिए न्यायाधीशों के लिए यह आवश्यक हो सकता है कि वे विस्तृत विचार-विमर्श प्रारंभ करें किन्तु विचार-विमर्श का अभिप्राय स्पष्ट करना होता है न कि परिभाषित करना होता है । न्यायाधीश कानूनों का निर्वचन करते हैं, वे निर्णयों का निर्वचन नहीं करते हैं । वे कानूनों के शब्दों का निर्वचन करते हैं ; उनके शब्दों का निर्वचन कानूनों के रूप में नहीं किया जाना है । लंदन ग्रेडिंग डाक कंपनी लिमिटेड बनाम हार्टन, (1951 अपील केसेज़ 737) वाले मामले में लार्ड मैक डकमोट ने निम्न प्रकार मत व्यक्त किया –

‘निरसंदेह, न्यायमूर्ति विल्लीज़ के शब्दों को मात्र संसद् के किसी अधिनियम का भाग मानकर और उनके लिए उपयुक्त निर्वचन के नियम लागू करके मामले का निपटारा नहीं किया जा सकता है । यह उस अति-विशिष्ट न्यायाधीश द्वारा वास्तव में प्रयुक्त भाषा को दिए जाने वाले व्यापक महत्व को कम करना नहीं है ।’ ”

उपर्युक्त सिद्धांत को **कर्नाटक सरकार और अन्य बनाम श्रीमती गोरम्मा और**

अन्य¹ वाले मामले में दोहराया गया है जिसमें न्यायालय ने निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :-

“10. न्यायालयों को इस बात पर विचार-विमर्श किए बिना विनिश्चयों का अवलंब नहीं लेना चाहिए कि किस प्रकार तथ्यात्मक स्थिति उस विनिश्चय की, जिसका अवलंब लिया जाता है, तथ्यात्मक स्थिति में उपयुक्त बैठती है। न्यायालयों की मताभिव्यक्तियों का पठन न तो यूकलिड की थियोरम के रूप में और न ही कानून के उपबंधों के रूप में किया जाना चाहिए और वह भी उनके संदर्भ से परे जाकर। इन मताभिव्यक्तियों का पठन अवश्य ही उस संदर्भ में किया जाना चाहिए जिनमें वे की गई प्रतीत होती हैं। न्यायालयों के निर्णय का अर्थान्वयन कानूनों के रूप में नहीं किया जाना है। किसी कानून के शब्दों, वाक्यांशों और उपबंधों का निर्वचन करने के लिए न्यायाधीशों के लिए यह आवश्यक हो सकता है कि वे विस्तृत विचार-विमर्श प्रारंभ करें किन्तु विचार-विमर्श का अभिप्राय स्पष्ट करना होता है न कि परिभाषित करना होता है। न्यायाधीश कानूनों का निर्वचन करते हैं, वे निर्णयों का निर्वचन नहीं करते हैं। वे कानूनों के शब्दों का निर्वचन करते हैं; उनके शब्दों का निर्वचन कानूनों के रूप में नहीं किया जाना है। लंदन ग्रेइंग डाक कंपनी लिमिटेड **बनाम** हार्टन, (1951 अपील केसेज़ 737) वाले मामले में लार्ड मैक डकमोट ने निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :-

“निस्संदेह, न्यायमूर्ति विल्लीज़ के शब्दों को मात्र संसद् के किसी अधिनियम का भाग मानकर और उनके लिए उपयुक्त निर्वचन के नियम लागू करके मामले का निपटारा नहीं किया जा सकता है। यह उस अति-विशिष्ट न्यायाधीश द्वारा वास्तव में प्रयुक्त भाषा को दिए जाने वाले व्यापक महत्व को कम करना नहीं है।”

17. इस न्यायालय का अन्य मामला जिसका अवलंब उच्च न्यायालय द्वारा भी लिया गया है, **हिमाचल प्रदेश वित्तीय निगम बनाम पवन और अन्य¹** अभिनाम वाला विनिश्चय है। उस मामले में व्यतिक्रमी कंपनी को

¹ (2007) 14 स्केल 613.

¹ 1988 की सिविल अपील सं. 1971 जिसका विनिश्चय तारीख 18 दिसम्बर, 2003 को किया गया।

तारीख 4 जनवरी, 1977 को अनुस्मरण सूचना दी गई थी; अधिनियम की धारा 29 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए कंपनी की बंधकित/आडमान रखी गई आस्तियों का कब्जा तारीख 25 अक्टूबर, 1982 को ग्रहण किया गया था ; अतिशेष रकम का संदाय करने के लिए प्रत्याभूत-दाताओं को सूचना तारीख 22 मई, 1985 को जारी की गई थी और अतिशेष रकम के प्रत्युद्धरण के लिए वाद तारीख 15 सितम्बर, 1985 को फाइल किया गया था ।

18. हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसे वाद के लिए परिसीमा अवधि विक्रय के पश्चात् और जब अतिशेष बकाया पाया गया था, प्रारंभ हुई थी और इसलिए वाद परिसीमा अवधि के भीतर था । तथापि, जब वाद उच्च न्यायालय के एक अन्य न्यायाधीश के समक्ष सुनवाई के लिए पहुंचा तो उसने पूर्ववर्ती मत से अपनी असहमति व्यक्त की और मामला एक बृहत्तर न्यायपीठ को निर्देशित कर दिया । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने इस प्रश्न का उत्तर यह अभिनिर्धारित करते हुए दिया अतिशेष रकम के लिए वाद मूल ऋणी द्वारा ऋण का संदाय न करने के परिणामस्वरूप फाइल किया गया था जो कि वह तारीख थी जब वाद हेतुक उद्भूत हुआ था । इसलिए, वाद अनुस्मरण सूचना की तारीख से तीन वर्ष के भीतर फाइल किया जाना चाहिए था । इस प्रकार, वाद समयवर्जित मानकर खारिज कर दिया गया था । इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय को उलट दिया । ऐसा करते समय उसने बंधक विलेख के खंड 7 के प्रति निर्देश किया जो कि निम्नलिखित आशय का था :-

“इन विलेखों द्वारा और राज्य वित्तीय निगम अधिनियम, 1951 की और वर्ष 1956 और 1972 में यथा-संशोधित धारा 29 और धारा 30 द्वारा निगम को प्रदत्त उपरोक्त अधिकारों और शक्तियों और उक्त अधिनियम के अधीन निगम को उपलब्ध विशेष उपचारों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, एतद्द्वारा यह करार और घोषित किया जाता है कि यदि औद्योगिक समुत्थान के भागीदार ब्याज सहित उक्त मूल रकम और इन विलेखों के अधीन उनसे शोध्य अन्य धनराशियां निगम को करार की गई रीति में संदत्त करने में असफल रहते हैं तो निगम बंधकित संपत्तियों, उक्त फिक्सचर और फिटिंग और अन्य आस्तियों का विक्रय करके अपने देयों की वसूली करने का हकदार होगा और यदि उनके विक्रय आगम निगम के देयों की तुष्टि करने में अपर्याप्त

हैं तो अतिशेष की वसूली औद्योगिक समुत्थान के भागीदारों और उनके स्वामित्वाधीन अन्य संपत्तियों से, चाहे वे इस प्रतिभूति में शामिल न हों, करने का हकदार होगा।”

19. न्यायालय ने उपर्युक्त खंड के आधार पर उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण में त्रुटि पाई चूंकि खंड 7 में विनिर्दिष्ट रूप से यह उपबंधित था कि निगम औद्योगिक समुत्थान के भागीदारों के विरुद्ध वसूली कार्यवाहियां फाइल कर सकेगा यदि औद्योगिक समुत्थान की आस्तियों के विक्रय आगम निगम के देयों की तुष्टि करने में अपर्याप्त थे।

20. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री ध्रुव मेहता ने प्रबल रूप से यह तर्क देते हुए इस निर्णय से प्रभेद करने का प्रयास किया कि उपर्युक्त मामला बंधक विलेख के खंड 7 के निर्वचन पर आधारित था जो कि पक्षकारों के बीच निष्पादित किया गया था और प्रस्तुत मामले में ऐसा खंड स्पष्ट रूप से मौजूद नहीं है। यदि इस न्यायालय का निर्णय एकमात्र रूप से बंधक विलेख के खंड 7 पर आधारित होता तो श्री ध्रुव मेहता का उपर्युक्त तर्क कुछ विश्वसनीय होता। तथापि, हम यह पाते हैं कि न्यायालय ने भी इस मुद्दे पर विनिर्दिष्ट रूप से विचार-विमर्श किया कि क्षतिपूर्ति के आधार पर वाद चलाने का अधिकार कब उद्भूत होगा और इस प्रश्न के लिए दिया गया विनिर्दिष्ट उत्तर यह था कि यह केवल आस्तियों का विक्रय किए जाने के पश्चात् ही होगा। यह निर्णय एक अन्य प्रासंगिक पहलू पर भी आधारित था, अर्थात् चूंकि बंधक विलेख निष्पादित किया गया था इसलिए यदि कोई बंधक वाद फाइल किया जाना था तो परिसीमा अवधि 12 वर्ष होगी। उक्त निर्णय में इस पहलू पर की गई निम्नलिखित चर्चा से भी अपीलार्थी के विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल की दलील का उत्तर मिल जाता है :-

“खंड न्यायपीठ ने परिसीमा के प्रश्न पर विचार करते समय एक बहुत विस्तृत निर्णय दिया है जो कि लगभग 50 पृष्ठों का है। तथापि, ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने इस तथ्य की अवेक्षा नहीं की है कि खंड 7 के अधीन एक क्षतिपूर्ति दी गई थी। इसलिए, वह आधार जिस पर निर्णय आधारित है, अर्थात्, उधार संव्यवहार और बंधक विलेख एक संपूर्ण संव्यवहार है जो कि अपृथक्करणीय है, पूर्णतः भ्रामक है। यह सुस्थापित विधि है कि क्षतिपूर्ति और/या प्रतिभू की संविदा एक स्वतंत्र और मुख्य संविदा से पृथक् संविदा है। इस प्रकार, वह प्रश्न जिस पर उन्हें विचार करना था, जो कि दुर्भाग्यवश

उन्होंने नहीं किया, यह था कि क्षतिपूर्ति के आधार पर वाद चलाने का अधिकार कब उद्भूत हुआ। हमारे मतानुसार, इस प्रश्न का केवल एक उत्तर हो सकता है। क्षतिपूर्ति की संविदा के आधार पर वाद चलाने का अधिकार केवल आस्तियों का विक्रय किए जाने के पश्चात् ही उद्भूत हुआ। इसी प्रक्रम पर ही अतिशेष देय अभिनिश्चित हुआ। केवल इसी प्रक्रम पर अतिशेष की वसूली के लिए वाद फाइल किया जा सकता था। मात्र इस कारण कि निगम ने वित्तीय निगम अधिनियम की धारा 29 के अधीन कार्यवाही की, इसका अभिप्राय यह नहीं था कि क्षतिपूर्ति की संविदा समाप्त हो गई थी। धारा 29 द्वारा निगम को मुख्य संविदा के अधीन आस्तियों का कब्जा ग्रहण करने और उनका विक्रय करने और देयों की वसूली करने मात्र के लिए समर्थ बनाया गया था। यह हो सकता है कि निगम द्वारा धारा 29 के अधीन कार्रवाई किए जाने और उनका कब्जा ग्रहण किए जाने पर वे मानित स्वामी बन गए। यह हो सकता है कि बंधक का अंत हो गया हो किन्तु क्षतिपूर्ति की संविदा, जो कि एक स्वतंत्र संविदा थी, समाप्त नहीं हुई थी। अतिशेष का दावा करने का अधिकार क्षतिपूर्ति की संविदा के अधीन केवल तभी उद्भूत हुआ था जब विक्रय आगम अपर्याप्त पाए गए थे।

इस मामले में, यह एक स्वीकृत स्थिति है कि विक्रय तारीख 28 जनवरी, 1984 और तारीख 14 मार्च, 1985 को हुआ। इस तारीख के पश्चात् ही क्षतिपूर्ति (खंड 7 में अंतर्विष्ट) के आधार पर वाद चलाने के अधिकार का प्रश्न उद्भूत हुआ। वाद तारीख 15 सितम्बर, 1985 को फाइल किए जाने के कारण परिसीमा के भीतर ही था। अतः, यह अभिनिर्धारित करना त्रुटिपूर्ण था कि वाद परिसीमा की विधि द्वारा वर्जित था।

अन्यथा भी यह अवश्य उल्लेख किया जाना चाहिए कि खंड न्यायपीठ ने यह कथन करके गलती की थी कि अतिशेष रकम की व्यक्तिगत रूप से वसूली करने का अधिकार तीन वर्ष के अवसान के पश्चात् समाप्त हो जाता है। यह स्मरणीय है कि अतिशेष की वसूली करने का प्रश्न प्रथमतः बंधक विलेख की बाबत उपचार निःशेष हो जाने के पश्चात् ही उद्भूत होगा। यदि कोई बंधक वाद फाइल किया जाना था तो उसकी परिसीमा अवधि 12 वर्ष होगी। निस्संदेह, ऐसे किसी वाद में विक्रय आगमों के अपर्याप्त हो जाने पर व्यक्तिगत डिक्री

के लिए प्रार्थना भी की जा सकती है। भले ही ऐसी प्रार्थना की जाए तो भी वाद एक बंधक वाद बना रहता है। इसलिए, ऐसे मामलों में परिसीमा अवधि 12 वर्ष बनी रहेगी।” (जोर देने के लिए रेखांकित)

21. अतः, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि जब निगम अधिनियम की धारा 29 के उपबंधों का अवलंब लेकर रकम की वसूली के लिए कदम उठाता है तो अतिशेष रकम की वसूली के लिए परिसीमा अवधि औद्योगिक समुत्थान की आस्तियों के विक्रय से प्राप्त आगमों को समायोजित करने के पश्चात् ही आरंभ होगी चूंकि निगम बंधकित/आडमान रखी गई आस्तियों के विक्रय के पश्चात् ही यह जानने की स्थिति में होगा कि क्या कोई कमी है या वसूल की गई रकम अधिक है। यह धारा 29 की उपधारा (1) की भाषा से स्पष्ट होता है जो स्थिति को पूर्णतः स्पष्ट करती है और उसे नीचे उद्धृत किया जाता है :-

“जहां कोई औद्योगिक समुत्थान, जो किसी करार के अधीन वित्तीय निगम के प्रति किसी दायित्व के अधीन है किसी उधार या अग्रिम धन या उसकी किसी किस्त के प्रतिसंदाय में या निगम द्वारा दी गई किसी प्रत्याभूति के संबंध में अपनी बाध्यताओं को पूरा करने में व्यतिक्रम करता है या वित्तीय निगम से किए गए अपने करार के निबंधनों का अन्यथा अनुपालन नहीं करता है वहां वित्तीय निगम को उस औद्योगिक समुत्थान का प्रबंध या कब्जा या दोनों ग्रहण करने का अधिकार होगा तथा वित्तीय निगम के पास गिरवी, बंधक, आडमान रखी गई या उसे समनुदेशित संपत्ति को पट्टे या बिक्री के तौर पर अंतरित करने और आप्त करने का अधिकार होगा।”

22. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि मात्र इस कारण कि निगम ने वित्तीय निगम अधिनियम की धारा 29 के अधीन कार्यवाही की, इसका अभिप्राय यह नहीं था कि क्षतिपूर्ति की संविदा समाप्त हो गई थी। धारा 29 द्वारा निगम को मुख्य संविदा के अधीन आस्तियों का कब्जा ग्रहण करने और उनका विक्रय करने और देयों की वसूली करने मात्र के लिए समर्थ बनाया गया था। यह हो सकता है कि निगम द्वारा धारा 29 के अधीन कार्रवाई किए जाने और उनका कब्जा ग्रहण किए जाने पर वे मानित स्वामी बन गए। यह हो सकता है कि बंधक का अंत हो गया हो किन्तु क्षतिपूर्ति की संविदा, जो कि एक स्वतंत्र संविदा थी, समाप्त नहीं हुई थी। अतिशेष का दावा करने का अधिकार क्षतिपूर्ति की संविदा के अधीन केवल तभी उद्भूत हुआ था जब विक्रय आगम अपर्याप्त पाए गए थे। क्षतिपूर्ति

की संविदा के आधार पर वाद चलाने का अधिकार आस्तियों का विक्रय किए जाने के पश्चात् उद्भूत हुआ था । प्रस्तुत मामला परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 55 के अंतर्गत आएगा जो कि पुराने परिसीमा अधिनियम, 1908 के अनुच्छेद 115 और अनुच्छेद 116 की तत्स्थानी है । क्षतिपूर्ति की संविदा/प्रतिभू के आधार पर वाद चलाने का अधिकार तब उद्भूत होगा जब संविदा का भंग हो जाता है ।

23. अतः, परिसीमा अवधि की गणना उस तारीख से की जानी है जब कंपनी की आस्तियों का विक्रय किया गया था न कि जब अनुस्मरण सूचना दी गई थी ।

24. उपर्युक्त विचार-विमर्श का परिणाम यह अभिनिर्धारित करना है कि प्रस्तुत अपील में कोई सार नहीं है । हम उच्च न्यायालय के निर्णय को कायम रखते हुए वर्तमान अपील खर्चे सहित खारिज करते हैं ।

अपील खारिज की गई ।

ग्रो.

संसद् के अधिनियम

बाल-विवाह प्रतिषेध अधिनियम, 2006

(2007 का अधिनियम संख्यांक 6)

[10 जनवरी, 2007]

**बाल-विवाहों के अनुष्ठान के प्रतिषेध और उससे
संबंधित या उसके आनुषंगिक
विषयों का उपबंध
करने के लिए
अधिनियम**

भारत गणराज्य के सत्तावनवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :-

1. **संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ** – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम बाल-विवाह प्रतिषेध अधिनियम, 2006 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ; और यह भारत से बाहर तथा भारत के परे भारत के सभी नागरिकों को भी लागू होता है :

परंतु इस अधिनियम की कोई बात पांडिचेरी संघ राज्यक्षेत्र के रेनोसाओं को लागू नहीं होगी ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केंद्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे और भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी और किसी उपबंध में इस अधिनियम के प्रारंभ के प्रतिनिर्देश का किसी राज्य के संबंध में यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह उस राज्य में उस उपबंध के प्रवृत्त होने के प्रतिनिर्देश है ।

2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) “बालक” से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसने, यदि पुरुष है तो, इक्कीस वर्ष की आयु पूरी नहीं की है और यदि नारी है तो, अठारह वर्ष की आयु पूरी नहीं की है ;

(ख) “बाल-विवाह” से ऐसा विवाह अभिप्रेत है जिसके बंधन में

आने वाले दोनों पक्षकारों में से कोई बालक है ;

(ग) विवाह के संबंध में “बंधन में आने वाले पक्षकार” से पक्षकारों में से कोई भी ऐसा पक्षकार अभिप्रेत है जिसका विवाह उसके द्वारा अनुष्ठापित किया जाता है या किया जाने वाला है ;

(घ) “बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी” के अन्तर्गत धारा 16 की उपधारा (1) के अधीन नियुक्त बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी भी है ;

(ङ) “जिला न्यायालय” से अभिप्रेत है ऐसे क्षेत्र में, जहां कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66) की धारा 3 के अधीन स्थापित कुटुंब न्यायालय विद्यमान है, ऐसा कुटुंब न्यायालय और किसी ऐसे क्षेत्र में जहां कुटुंब न्यायालय नहीं है, किंतु कोई नगर सिविल न्यायालय विद्यमान है वहां वह न्यायालय और किसी अन्य क्षेत्र में, आरंभिक अधिकारिता रखने वाला प्रधान सिविल न्यायालय और उसके अंतर्गत ऐसा कोई अन्य सिविल न्यायालय भी है जिसे राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा ऐसे न्यायालय के रूप में विनिर्दिष्ट करे जिसे ऐसे मामलों के संबंध में अधिकारिता है, जिनके बारे में इस अधिनियम के अधीन कार्रवाई की जाती है ;

(च) “अवयस्क” से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसके बारे में वयस्कता अधिनियम, 1875 (1875 का 9) के उपबंधों के अधीन यह माना जाना है कि उसने, वयस्कता प्राप्त नहीं की है ।

3. बाल-विवाहों का, बंधन में आने वाले पक्षकार के, जो बालक है, विकल्प पर शून्यकरणीय होना – (1) प्रत्येक बाल-विवाह जो चाहे इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व या पश्चात् अनुष्ठापित किया गया हो, विवाह बंधन में आने वाले ऐसे पक्षकार के, जो विवाह के समय बालक था, विकल्प पर शून्यकरणीय होगा :

परंतु किसी बाल-विवाह को अकृतता की डिक्री द्वारा बातिल करने के लिए, विवाह बंधन में आने वाले ऐसे पक्षकार द्वारा ही, जो विवाह के समय बालक था, जिला न्यायालय में अर्जी फाइल की जा सकेगी ।

(2) यदि अर्जी फाइल किए जाने के समय, अर्जीदार अवयस्क है तो अर्जी उसके संरक्षक या वाद-मित्र के साथ-साथ बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी की मार्फत की जा सकेगी ।

(3) इस धारा के अधीन अर्जी किसी भी समय किंतु अर्जी

फाइल करने वाले बालक के वयस्कता प्राप्त करने के दो वर्ष पूरे करने से पूर्व फाइल की जा सकेगी ।

(4) इस धारा के अधीन अकृतता की डिक्री प्रदान करते समय जिला न्यायालय, विवाह के दोनों पक्षकारों और उनके माता-पिता या उनके संरक्षकों को यह निदेश देते हुए आदेश करेगा कि वे, यथास्थिति, दूसरे पक्षकार, उसके माता-पिता या संरक्षक को विवाह के अवसर पर उसको दूसरे पक्षकार से प्राप्त धन, मूल्यवान वस्तुएं, आभूषण और अन्य उपहार या ऐसी मूल्यवान वस्तुओं, आभूषणों, अन्य उपहारों के मूल्य के बराबर रकम और धन लौटा दे :

परंतु इस धारा के अधीन कोई आदेश तब तक पारित नहीं किया जाएगा जब तक कि संबद्ध पक्षकारों को जिला न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने और यह कारण दर्शित करने के लिए कि ऐसा आदेश क्यों नहीं पारित किया जाए, सूचनाएं न दे दी गई हों ।

4. बाल-विवाह के बंधन में आने वाली महिला पक्षकार के भरण-पोषण और निवास के लिए उपबंध – (1) धारा 3 के अधीन डिक्री प्रदान करते समय, जिला न्यायालय बाल-विवाह के बंधन में आने वाले पुरुष पक्षकार को और यदि ऐसे विवाह के बंधन में आने वाला पुरुष पक्षकार अवयस्क है, तो उसके माता-पिता या संरक्षक को, विवाह के बंधन में आने वाली महिला पक्षकार को, उसके पुनर्विवाह तक, भरण-पोषण का संदाय करने के लिए निदेश देते हुए अंतरिम या अंतिम आदेश भी कर सकेगा ।

(2) संदेय भरण-पोषण की मात्रा का अवधारण जिला न्यायालय द्वारा, बालक की आवश्यकताओं, अपने विवाह के दौरान ऐसे बालक द्वारा भोगी गई जीवन शैली और संदाय करने वाले पक्षकार की आय के साधनों को ध्यान में रखते हुए किया जाएगा ।

(3) भरण-पोषण की रकम का मासिक या एकमुश्त राशि के रूप में संदाय करने का निदेश दिया जा सकेगा ।

(4) यदि धारा 3 के अधीन अर्जी देने वाला पक्षकार विवाह के बंधन में आने वाली स्त्री पक्षकार है तो जिला न्यायालय उसके पुनर्विवाह तक उसके निवास के लिए उपयुक्त आदेश भी कर सकेगा ।

5. बाल-विवाह से बालकों का भरण-पोषण और अभिरक्षा – (1) जहां बाल-विवाह से जन्मे बालक हैं, वहां जिला न्यायालय ऐसे बालकों की अभिरक्षा के लिए समुचित आदेश करेगा ।

(2) इस धारा के अधीन किसी बालक की अभिरक्षा के लिए कोई

आदेश करते समय, बालक के कल्याण और सर्वोत्तम हितों पर जिला न्यायालय द्वारा, सर्वोपरि ध्यान दिया जाएगा ।

(3) बालक की अभिरक्षा के लिए किसी आदेश में, दूसरे पक्षकार की, ऐसे बालक तक ऐसी रीति से, जो बालक के हितों को सर्वोत्तम रूप से पूरा करती हो, पहुंच के लिए समुचित निदेश, और ऐसे अन्य आदेश, जो जिला न्यायालय बालक के हित में उचित समझे, सम्मिलित हो सकेंगे ।

(4) जिला न्यायालय विवाह के किसी पक्षकार या उनके माता-पिता या संरक्षक द्वारा बालक के भरण-पोषण का उपबंध करने के लिए समुचित आदेश भी कर सकेगा ।

6. बाल-विवाहों से जन्मे बालकों की धर्मजता – इस बात के होते हुए भी कि बाल-विवाह धारा 3 के अधीन अकृतता की डिक्री द्वारा बातिल कर दिया गया है, डिक्री किए जाने के पूर्व ऐसे विवाह से जन्मा या गर्भाहित प्रत्येक बालक, चाहे वह इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व या पश्चात् पैदा हुआ हो, सभी प्रयोजनों के लिए धर्मज बालक समझा जाएगा ।

7. जिला न्यायालय की धारा 4 और धारा 5 के अधीन जारी किए गए आदेशों को उपांतरित करने की शक्ति – जिला न्यायालय को धारा 4 या धारा 5 के अधीन और यदि परिस्थितियों में कोई परिवर्तन है जो अर्जी के लंबित रहने के दौरान किसी भी समय और अर्जी के अंतिम निपटारे के पश्चात् भी किसी आदेश में जोड़ने, उसे उपांतरित या प्रतिसंहत करने की शक्ति होगी ।

8. वह न्यायालय जिसमें अर्जी दी जानी चाहिए – धारा 3, धारा 4 और धारा 5 के अधीन अनुतोष प्रदान करने के प्रयोजन के लिए अधिकारिता रखने वाले जिला न्यायालय में उस स्थान के ऊपर जहां प्रतिवादी या बालक निवास करता है या जहां विवाह अनुष्ठापित किया गया था या जहां पक्षकारों ने अंतिम रूप से एक साथ निवास किया था या जहां अर्जीदार अर्जी पेश करने की तारीख को निवास कर रहा है, अधिकारिता रखने वाला जिला न्यायालय सम्मिलित होगा ।

9. बाल-विवाह करने वाले पुरुष वयस्क के लिए दंड – जो कोई, अठारह वर्ष से अधिक आयु का पुरुष वयस्क होते हुए, बाल-विवाह करेगा, वह, कठोर कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा, अथवा दोनों से, दंडनीय होगा ।

10. **बाल-विवाह का अनुष्ठान करने के लिए दंड** – जो कोई किसी बाल-विवाह को संपन्न करेगा, संचालित करेगा, या निर्दिष्ट करेगा, या दुष्प्रेरित करेगा, वह जब तक यह साबित न कर दे कि उसके पास यह विश्वास करने का कारण था कि वह विवाह बाल-विवाह नहीं था, कठोर कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा और जुर्माने से भी, जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

11. **बाल-विवाह के अनुष्ठान का संवर्धन करने या उसे अनुज्ञात करने के लिए दंड** – (1) जहां कोई बालक बाल-विवाह करेगा, वहां ऐसा कोई व्यक्ति जिसके भारसाधन में चाहे माता-पिता अथवा संरक्षक या किसी अन्य व्यक्ति के रूप में अथवा अन्य किसी विधिपूर्ण या विधिविरुद्ध हैसियत में, बालक है, जिसके अंतर्गत किसी संगठन या व्यक्ति निकाय का सदस्य भी है, जो विवाह का संवर्धन करने के लिए कोई कार्य करता है या उसका अनुष्ठापित किया जाना अनुज्ञात करता है या उसका अनुष्ठान किए जाने से निवारण करने में उपेक्षापूर्वक असफल रहता है, जिसमें बाल-विवाह में उपस्थित होना या भाग लेना सम्मिलित है, कठोर कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा और जुर्माने से भी, जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा :

परंतु कोई स्त्री कारावास से दंडनीय नहीं होगी ।

(2) इस धारा के प्रयोजनों के लिए, जब तक कि इसके प्रतिकूल साबित नहीं हो जाता है या उपधारणा की जाएगी कि जहां किसी अवयस्क बालक ने विवाह किया है वहां ऐसे अवयस्क बालक का भारसाधन रखने वाला व्यक्ति विवाह अनुष्ठापित किए जाने से निवारित करने में उपेक्षापूर्वक असफल रहा है ।

12. **कतिपय परिस्थितियों में किसी अवयस्क बालक के विवाह का शून्य होना** – जहां कोई बालक, जो अवयस्क है, विवाह के प्रयोजन के लिए, –

(क) विधिपूर्ण संरक्षक की देखरेख से बाहर लाया जाता है या आने के लिए फुसलाया जाता है ; या

(ख) किसी स्थान से जाने के लिए बलपूर्वक बाध्य किया जाता है या किन्हीं प्रवंचनापूर्ण साधनों से उत्प्रेरित किया जाता है ; या

(ग) विक्रय किया जाता है, और किसी रूप में उसका विवाह

कराया जाता है या यदि अवयस्क विवाहित है और उसके पश्चात् उस अवयस्क का विक्रय किया जाता है या दुर्व्यापार किया जाता है या अनैतिक प्रयोजनों के लिए उसका उपयोग किया जाता है,

वहां ऐसा विवाह अकृत और शून्य होगा ।

13. बाल-विवाहों को प्रतिषिद्ध करने वाला व्यादेश जारी करने की न्यायालय की शक्ति – (1) इस अधिनियम में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, यदि प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट या महानगर मजिस्ट्रेट का बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी के आवेदन पर, या किसी व्यक्ति से परिवाद के माध्यम से या अन्यथा सूचना प्राप्त होने पर यह समाधान हो जाता है कि इस अधिनियम के उल्लंघन में बाल-विवाह तय किया गया है या उसका अनुष्ठान किया जाने वाला है, तो ऐसा मजिस्ट्रेट ऐसे किसी व्यक्ति के, जिसके अंतर्गत किसी संगठन का सदस्य या कोई व्यक्ति संगम भी है, विरुद्ध ऐसे विवाह को प्रतिषिद्ध करने वाला व्यादेश निकालेगा ।

(2) उपधारा (1) के अधीन कोई परिवाद, बाल-विवाह या बाल-विवाहों का अनुष्ठान होने की संभाव्यता से संबंधित व्यक्तिगत जानकारी या विश्वास का कारण रखने वाले किसी व्यक्ति द्वारा और युक्तियुक्त जानकारी रखने वाले किसी गैर-सरकारी संगठन द्वारा, किया जा सकेगा ।

(3) प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट या महानगर मजिस्ट्रेट का न्यायालय किसी विश्वसनीय रिपोर्ट या सूचना के आधार पर स्वप्रेरणा से भी संज्ञान कर सकेगा ।

(4) अक्षय तृतीया जैसे कतिपय दिनों पर, सामूहिक बाल-विवाहों के अनुष्ठान का निवारण करने के प्रयोजन के लिए, जिला मजिस्ट्रेट उन सभी शक्तियों के साथ, जो इस अधिनियम द्वारा या उसके अधीन बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी को प्रदत्त हैं, बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी समझा जाएगा ।

(5) जिला मजिस्ट्रेट को बाल-विवाहों के अनुष्ठान को रोकने या उनका निवारण करने की अतिरिक्त शक्तियां भी होंगी और इस प्रयोजन के लिए, वह सभी समुचित उपाय कर सकेगा और अपेक्षित न्यूनतम बल का प्रयोग कर सकेगा ।

(6) उपधारा (1) के अधीन कोई व्यादेश किसी व्यक्ति या किसी संगठन के सदस्य या व्यक्ति संगम के विरुद्ध तब तक नहीं निकाला जाएगा जब तक कि न्यायालय ने, यथास्थिति, ऐसे व्यक्ति, संगठन के सदस्यों या व्यक्ति संगम को पूर्व सूचना न दे दी हो और उसे/या उनको

व्यादेश निकाले जाने के विरुद्ध हेतुक दर्शित करने का अवसर न दे दिया हो :

परंतु किसी अत्यावश्यकता की दशा में, न्यायालय को, इस धारा के अधीन कोई सूचना दिए बिना, अंतरिम व्यादेश निकालने की शक्ति होगी ।

(7) उपधारा (1) के अधीन जारी किए गए किसी व्यादेश की, ऐसे पक्षकार को, जिसके विरुद्ध व्यादेश जारी किया गया था, सूचना देने और सुनने के पश्चात् पुष्टि की जा सकेगी या उसे निष्प्रभाव किया जा सकेगा ।

(8) न्यायालय, उपधारा (1) के अधीन जारी किए गए किसी व्यादेश को या तो स्वप्रेरणा पर या किसी व्यथित व्यक्ति के आवेदन पर विखण्डित या परिवर्तित कर सकेगा ।

(9) जहां कोई आवेदन उपधारा (1) के अधीन प्राप्त होता है, वहां न्यायालय आवेदक को, या तो स्वयं या अधिवक्ता द्वारा, अपने समक्ष उपस्थित होने का शीघ्र अवसर देगा, और यदि न्यायालय आवेदक को सुनने के पश्चात् आवेदन को पूर्णतः या भागतः नामंजूर करता है तो वह ऐसा करने के अपने कारणों को लेखबद्ध करेगा ।

(10) जो कोई, यह जानते हुए कि उसके विरुद्ध उपधारा (1) के अधीन व्यादेश जारी किया गया है, उसे व्यादेश की अवज्ञा करेगा, तो वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी अथवा जुर्माने से, जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा, अथवा दोनों से, दंडनीय होगा :

परंतु कोई स्त्री कारावास से दंडनीय नहीं होगी ।

14. व्यादेशों के उल्लंघन में बाल-विवाहों का शून्य होना – धारा 13 के अधीन जारी किए गए व्यादेशों के उल्लंघन में, चाहे वह अंतरिम हो या अंतिम, अनुष्ठापित किया गया कोई बाल-विवाह प्रारंभ से ही शून्य होगा ।

15. अपराधों का संज्ञेय और अजमानतीय होना – दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के अधीन दण्डनीय अपराध संज्ञेय और अजमानतीय होगा ।

16. बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी – (1) राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, संपूर्ण राज्य या उसके ऐसे भाग के लिए, जो उस अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किया जाए, बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी के नाम से ज्ञात, किसी अधिकारी या अधिकारियों की नियुक्ति करेगी, जिसकी

अधिकारिता, अधिसूचना में विनिर्दिष्ट क्षेत्र या क्षेत्रों पर होगी ।

(2) राज्य सरकार, किसी समाज सेवा में विख्यात किसी स्थानीय सम्माननीय सदस्य या ग्राम पंचायत या नगरपालिका के किसी अधिकारी से या सरकार के अथवा किसी पब्लिक सेक्टर के उपक्रम के किसी अधिकारी से या किसी गैर-सरकारी संगठन के किसी पदाधिकारी से बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी की सहायता करने के लिए अनुरोध कर सकेगी और, यथास्थिति, ऐसा सदस्य, अधिकारी या पदाधिकारी तदनुसार कार्रवाई करने के लिए बाध्य होगा ।

(3) बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) बाल-विवाहों के अनुष्ठापन का ऐसी कार्रवाई करके, जो वह उचित समझे निवारण करे ;

(ख) इस अधिनियम के उपबंधों का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों के प्रभावी अभियोजन के लिए साक्ष्य संग्रह करे ;

(ग) बाल-विवाह के अनुष्ठापन का संवर्धन करने, सहायता देने या होने देने में अन्तर्वलित न होने के लिए व्यष्टिक मामलों में सलाह दे या क्षेत्र के निवासियों को साधारणतया परामर्श दे ;

(घ) बाल-विवाह के परिणामस्वरूप होने वाली बुराई के प्रति जागृति पैदा करे ;

(ङ) बाल-विवाहों के मुद्दे पर समाज को सुग्राही बनाए ;

(च) ऐसी नियतकालिक विवरणियां और आंकड़े दे, जो राज्य सरकार निर्देशित करे ; और

(छ) ऐसे अन्य कृत्यों और कर्तव्यों का निर्वहन करे, जो राज्य सरकार द्वारा उसे समनुदेशित किए जाएं ।

(4) राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, ऐसी शर्तों और परिसीमाओं के अधीन रहते हुए, बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी को किसी पुलिस अधिकारी की ऐसी शक्तियां विनिहित कर सकेगी जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाएं और बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी ऐसी शक्तियों का, ऐसी शर्तों और परिसीमाओं के अधीन रहते हुए, जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाएं, प्रयोग करेगा ।

(5) बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी को धारा 4, धारा 5 और धारा 13

के अधीन और धारा 3 के अधीन बालक के साथ आदेश के लिए न्यायालय को आवेदन करने की शक्ति होगी ।

17. **बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारियों का लोक सेवक होना** – बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी भारतीय दण्ड संहिता, 1860 (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थान्तर्गत लोक सेवक समझे जाएंगे ।

18. **सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण** – इस अधिनियम या तद्धीन बनाए गए किसी नियम या किए गए किसी आदेश के अनुसरण में सद्भावपूर्वक की गई या किए जाने के लिए आशयित किसी बात के लिए कोई भी वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी के विरुद्ध नहीं होगी ।

19. **नियम बनाने की राज्य सरकार की शक्ति** – (1) राज्य सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी ।

(2) इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखा जाएगा ।

20. **1955 के अधिनियम संख्यांक 25 का संशोधन** – हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 18 के खंड (क) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाएगा, अर्थात् :-

“(क) धारा 5 के खंड (iii) में विनिर्दिष्ट शर्त के उल्लंघन की दशा में, कठोर कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से, जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा अथवा दोनों से ;” ।

21. **निरसन और व्यावृत्ति** – (1) बाल-विवाह अवरोध अधिनियम, 1929 (1929 का 19) इसके द्वारा निरसित किया जाता है ।

(2) ऐसे निरसन के होते हुए भी, इस अधिनियम के प्रारंभ पर उक्त अधिनियम के अधीन लंबित या जारी सभी मामले और अन्य कार्यवाहियां, जारी रहेंगी और निरसित अधिनियम के उपबंधों के अनुसार इस प्रकार निपटाई जाएंगी मानो यह अधिनियम पारित न हुआ हो ।